लोक विभव

एक अनूठा उपहार

(भाग–1)

जैन साधु शुद्धात्मसागर

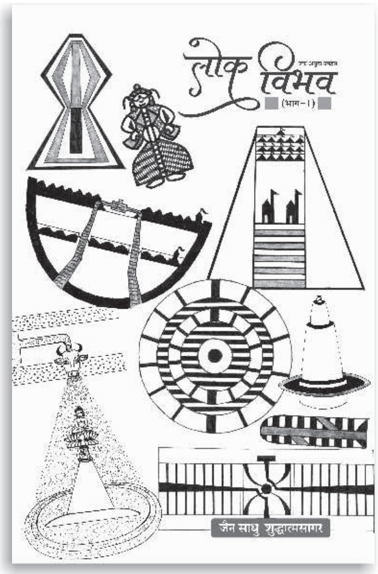

कृति	–	लोक विभव
आशीर्वाद एवं प्रेरणा	–	प.पू. सारस्वत कवि आचार्य श्री 108 विभवसागर जी महाराज
कृतिकार	–	जैन साधु शुद्धात्मसागर
चित्र रचना	–	जैन साधु शुद्धात्मसागर
संस्कार	–	प्रथम, वर्ष–2023
प्रसंग	–	शुद्धात्म वर्षायोग–2023, पन्ना (म.प्र.)
आवृत्ति	–	1000
मूल्य	–	स्वाध्याय
मुद्रक	–	ज्योति ग्राफिक्स, जयपुर मो. 8290526049

अर्पणम् समर्पणम् त्वदीयं तुभ्यं समर्थये

गुरुदेव!

आप वो घना वटवृक्ष हो जिन्होंने मूल रूप में विकसित होकर शाखावत् मेरा विकास किया ताकि मैं अपनी शाखाओं से ज्ञान–ध्यान रूपी फल का आस्वाद जिनशासन के लिए प्रदान करा सकूँ।

आप वो योगी हो जिन्होंने साधनों से दूर रख साधना की ओर मुझे अग्रसर किया।

आप वो गंगासम निर्मल धारा हो जिन्होंने हमारी रग–रग में ज्ञान–ध्यान की आराधना को प्रवाहित किया। आपने कहा था– ''आप खूब पढ़ो..., खूब आगे बढ़ो... जिनशासन की उन्नति में सहयोगी बनो।'' इसी आशीर्वाद के फलस्वरूप इस ग्रंथ का सृजन हो पाया है। ऐसे परोपकारी सारस्वत कवि आचार्य श्री विभवसागर जी महाराज के करकमलों में ग्रंथ की पुष्पांजलि, सादर, सविनय समर्पित...

नमोऽस्तु भगवन्!

प्रस्तावना

आचार्य समंतभद्र स्वामी ने समस्त जैन वाङ्मय को प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग में विभक्त किया है। करणानुयोग का लक्षण लिखते हुए उन्होंने कहा–

लोकालोकविभक्ते– र्युग परिवृत्तेश्–चतुर्गतीनाञ्च ।
आदर्शमिव तथा मति–रवैति करणानुयोगञ्च ।।44।।

लोक और अलोक के विभाग को, युगों के परिवर्तन को तथा चारों गतियों के लिए दर्पण सदृश ऐसे करणानुयोग को सम्यग्ज्ञान जानता है।

अर्थात्– जिसमें लोकालोक, युग परिवर्तन और चतुर्गति परिवर्तन का वर्णन हो, उसे करणानुयोग कहते है।

करणानुयोग के ग्रंथों का जैनागम में बहुत विस्तार है। षट्खण्डागम, त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, गोम्मटसार जीवकाण्ड–कर्मकाण्ड, लब्धिसार तथा क्षपणासार आदि ग्रंथ तो स्पष्ट ही करणानुयोग के ग्रंथ हैं, परन्तु तत्त्वार्थ सूत्र, तत्त्वार्थराजवार्तिक के तृतीय और चतुर्थ अध्याय तथा हरिवंश पुराण का लोकवर्णनाधिकार भी इसी करणानुयोग के अंग हैं।

इस पुस्तक में तत्त्वार्थ सूत्र के तृतीय अध्याय के 39 सूत्र हैं। आदि के छह सूत्रों में अधोलोक का वर्णन करते हुए बताया गया है कि वहाँ कितनी पृथिवियाँ हैं। उन पृथिवियों के नाम तथा उनमें स्थित नरक, नरकों में स्थित बिलों का विस्तार एवं संख्या कही गयी है। वहाँ रहने वाले नारकी क्या खाते हैं? क्या पीते हैं? वहाँ उन्हें किस प्रकार के शारीरिक, मानसिक, क्षेत्रजनित अर्थात् वहाँ की भूमि के स्पर्श मात्र से

होने वाली वेदनाएँ, वहाँ असुरकुमार, अम्बावरिस जाति के देव आकर किस–किस प्रकार के दु:ख देते हैं तथा वे नारकी आपस में किस प्रकार लड़ते हैं? उनकी लेश्याएँ–परिणाम कैसे होते हैं? उनके शरीर की आकृतियाँ, उत्पत्ति स्थान, उत्पत्ति के समय वे किस प्रकार ऊपर से नीचे गिरते हैं? किस प्रकार 36 प्रकार के शस्त्रों पर उछलते हैं? किस प्रकार दूसरे नारकी उन्हें ललकारते हुए उन पर टूट पड़ते हैं? वे किस–किस प्रकार की विक्रिया कर सकते हैं? एवं वे वहाँ पर कितने काल पर्यन्त रहते हैं? मरने के बाद उनके शरीर का क्या होता है? यहाँ कैसे–कैसे काम करने वाले को नरक में किस–किस प्रकार के दु:ख भोगने पड़ते हैं? आदि–आदि अनेक प्रकार से वर्णन किया है।

तत्पश्चात् मध्य–लोक में असंख्यात द्वीप–समुद्र है। उनका विस्तार, उनमें स्थित भरतादि क्षेत्र, उनका विभाजन करने वाले हिमवानादि पर्वत, अढ़ाई द्वीप की सीमा का निर्धारक मानुषोत्तर पर्वत, उसका विस्तार, कर्मभूमियाँ, भोगभूमियाँ इन क्षेत्रों में रहने वाले जीवों की आयु, अवगाहना, भरत–ऐरावत क्षेत्र में होने वाले उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी काल में होने वाली षट्कालों की व्यवस्था, उनमें होने वाली हानि–वृद्धि आदि का वर्णन है। विदेह क्षेत्र पर्यन्त दक्षिण दिशा में स्थित भरतादि का विवरण करके उन्हीं के समान विस्तार, पर्वत, पर्वत पर स्थित सरोवर, कमल, कमलों पर रहने वाली देवियाँ, उनकी आयु आदि जानना चाहिए, ऐसा संकेत दिया है। जम्बूद्वीप को घेरे हुए लवण समुद्र, लवण समुद्र को घेरे हुए धातकीखण्ड, धातकीखण्ड को घेरे हुए कालोदधि समुद्र, उसको घेरे हुए पुष्करवर द्वीप और इसके ठीक बीच में चूड़ी के आकार वाला मानुषोत्तर पर्वत है। इन ढ़ाई द्वीपों में रहने वाले

मनुष्य क्या ऋद्धियाँ प्राप्त करने वाले भी होते हैं या केवल विदेह क्षेत्र में उत्पन्न हुए मनुष्य ही ऋद्धि सम्पन्न हो सकते हैं? मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं? क्या जम्बूद्वीप जैसी ही व्यवस्था धातकीखण्ड और आधे पुष्कर में है या अन्य प्रकार की? इस प्रकार का वर्णन करते हुए अन्त में मनुष्य एवं तिर्यंचों की आयु का कथन करते हुए अध्याय को पूरा किया है।

"को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे"

के अनुसार पुस्तक में त्रुटियाँ होना सम्भव है। अत: सुधी श्रावकों से अनुरोध है कि त्रुटियाँ सुधारकर पढ़े व मुझे भी अवगत करावें।

प्रस्तुत पुस्तक लिखने की प्रेरणा मुझे पूज्य गुरुदेव से मिली । मैं गुरुदेव का विशेष आभारी हूँ जिनके सान्निध्य में करणानुयोग के अनेक ग्रंथों का अभ्यास किया। साथ ही पुस्तक लिखने में जिन्होंने भी सहयोग किया उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

।। शुभं भूयात् ।।

साधु शुद्धात्म सागर

दीपावल पर्व
13 नवम्बर, 2023
पन्ना (म.प्र.)

ग्रंथ का उद्भव

किञ्चिद् वक्तव्यम्

मैं जब लोकालोक के बारे में ठीक तरह से जानता तक नहीं था तब वर्षायोग–2021 में पूज्य गुरुदेव श्रमणाचार्य श्री विभवसागर जी महाराज ने कहा– ''बेटा शुद्धात्म!'' आपको तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय 3 एवं 4 में जो विषय प्रतिपादित किया गया है उसे सरल, सुबोध रीति से प्रस्तुत करना है।

किन्तु, इस कार्य के प्रति मेरा उत्साह ना था। मन में विचार आता था ''पूज्य गुरुदेव जो काम मुझे सौंप रहे हैं वह तो Maths and Science का विषय है। ना तो मैं कोई Mathematician हूँ, ना ही Scientist ... तथा जो विषय खोज से उपलब्ध होता है उसे मैं लोगों के समक्ष कैसे प्रकट कर पाऊँगा? अत: मैंने गुरुदेव के आदेश पर कोई ध्यान नहीं दिया। क्योंकि यह विषय सामान्य बुद्धिधारी जीवों को अरोचक लगता है... एकदम शुष्क व नीरस लगता है और लोगों को कहते सुना "First impression is the last impression" के लॉजिक से पीछे हट तो हैं। वर्ष 2022 का वर्षायोग गुरुवर से पृथक् ''घुवारा'' नगर में हुआ। वहाँ मेरे द्वारा लोगों को तत्त्वार्थ सूत्र के अध्याय–3 का गहन स्वाध्याय कराया गया एवं ''करणानुयोग सिद्धान्त दर्शनी'' का आयोजन भी हुआ जिसे सुन और देखकर गुरुदेव ने पुन: कहा– बेटा! अब इस क्षेत्र में कार्य करने हेतु कलम चलाना होंगी... आप करणानुयोग के ग्रंथों का स्वाध्याय कर उसे सहज, सुबोध शैली में तैयार करें।

अब कोई Option शेष नहीं था।

"गुरु आज्ञा भी, गुरु से बढ़ी होती, गुरु ने कहा।"

इस वाक्य को ध्यान में रखकर गुरुदेव के वचन को शिरोधार कर "त्रिलोक सार, तिलोयपण्णत्ती, सिद्धान्तसार दीपक, तत्त्वार्थवृत्ति: तत्त्वार्थसूत्र सम्बन्धी साहित्य की गवेषणा करनी प्रारम्भ की।

कुछ विषय का आलेखन भी किया। लेकिन चातुर्मास के अंतिम चरण विहार के अवसर पर सारे लेख कहीं खो गये, जो अब तक नहीं मिले।

एक दिन "हीरा नगरी" पन्ना में तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-3 को पढ़ाते-पढ़ाते श्रुतदेव से विनती की- भगवन्! हे श्रुतदेव! गुरुदेव की इच्छा है, लोक-अलोक सम्बन्धी विषय को सरलतम् रीति से विश्व के समक्ष उजागर करूँ। आप मुझे मार्गदर्शन दे...। लिखना प्रारंभ हुआ। अल्प काल में गुरुदेव के पूर्व आशीष तले स्वहस्त सचित्र ग्रंथ का सर्जन हो गया।

जिन भी महानुभाव के सहयोग से यह ग्रंथ रत्न, उत्तम हृदयाकर्षक, तत्त्वबोधक, मनमोहक चित्रों के साथ प्रकाशित हो सका है उनके लिए सहृदय से आशीर्वाद!

दीपावली पर्व
13 नवम्बर, 2023
पन्ना (म.प्र.)

श्रुताराधक
साधु शुद्धात्मसागर

'तत्त्वार्थ सूत्र' के पाठ के साथ ध्यान भी

तत्त्वार्थ सूत्र का पाठ तो करना ही चाहिए, लेकिन उसके साथ–साथ तत्त्वार्थ सूत्र के सूत्रों का, सूत्रों के अर्थ के साथ एक–एक सूत्र का ध्यान भी किया जा सकता है। एक–एक सूत्र सम्बन्धी विषय का चिंतन भी किया जा सकता है, लेकिन यह विद्वानों की बात है। जिसे शास्त्रों का पूर्वापर ज्ञान हो वही इस प्रकार से चिंतन एवं ध्यान कर सकता है, लेकिन जो सामान्य व्यक्ति है वह सूत्रों का गहराई से चिंतन नहीं कर सकता है पर वह भी सूत्रों को आधार बनाकर ध्यान कर सकता है। अपने उपयोग को एकाग्र करके पापों की निर्जरा कर सकता है, भविष्य में केवलज्ञान प्राप्ति का एक साधन जुटा सकता है। इसमें से एक विषय हम इस प्रकार ले सकते हैं।

कहाँ किस सूत्र में आये हुये ''तत्'' शब्द का क्या अर्थ है। सूत्रराज में कई स्थानों पर तत् शब्द आया है, लेकिन सभी तत् शब्दों का अर्थ अलग–अलग है, क्योंकि सभी तत् ऊपर के सूत्रों के अर्थों के साथ जुड़े हुये हैं। जैसे–

तृतीय अध्याय के 9वें सूत्र में **तन्मध्ये मेरु.... में ''तत्''** का अर्थ उन असंख्यात द्वीप समुद्रों के। 11वें सूत्र में **तद्विभाजिनः.... में ''तत्''** का अर्थ उन क्षेत्रों का। 15वें सूत्र में **प्रथमोयोजनसहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्भोह्रदः में ''तत्''** का अर्थ – आयाम का। 17वें सूत्र में **तन्मध्ये योजनं पुष्करं में ''तत्''** का अर्थ उस सरोवर के। 18वें सूत्र में **तद्द्विगुणद्विगुणा... में ''तत्''** का अर्थ – ऊपर कहे गये ह्रद और पुष्करों से। 19वें सूत्र में **तन्निवासिन्यो देव्यः... में ''तत्''** का अर्थ – उन कमलों पर। 25वें सूत्र में **तद्द्विगुणद्विगुण– विस्तारा.... में ''तत्''** का अर्थ – उससे (भरत क्षेत्र से पर्वत व क्षेत्र.....)

इस प्रकार से हम अपने उपयोग को स्थिर करके शुभ में लगा सकते हैं और संक्लेशों से बच सकते हैं।

सूत्रों का पाठ करते समय ध्यान दें

तत्त्वार्थ सूत्र का एक बार पाठ करने का फल एक उपवास बताया गया है। उसका कारण एक–एक सूत्र कई–कई ग्रन्थों का सार अपने अन्दर गर्भित करते हुए उत्पन्न हुआ है। यदि पाठ करते–करते हमारा उपयोग थोड़ा सा भी इधर–उधर हो जाता है तो किस अध्याय से किस अध्याय पर पहुँच जावे, कोई भरोसा नहीं है। जिस प्रकार भक्तामरस्तोत्र का पाठ करते समय एकाग्रता समाप्त होने पर चौथे से पन्द्रहवें या चालीसवें छंद पर भी पहुँच सकते हैं, पहुँच जाते हैं। यदि हम एकाग्रता से उपयोग पूर्वक सूत्रों का पाठ करें तो हमें सच में ही उपवास का फल मिल सकता है अन्यथा हमने बहुत बार सूत्रों का पाठ किया है, करते आ रहे हैं। हमें विशेष फल नहीं मिला और यदि हमने सूत्रग्रंथ का महत्त्व नहीं समझा तो आगे भी हम लापरवाही से ही पाठ करते जायेंगे तो सही फल नहीं मिल पायेगा। अतः हम बहुमान पूर्वक सूत्रग्रंथ को बहुत महत्त्वपूर्ण समझते हुए एकाग्रता से मन लगाकर पाठ करें। अथवा आप अपनी अँगुलियों पर सूत्रों की गिनती करते हुए पाठ करें ताकि कोई सूत्र छूट नहीं जावे और न ही हम कहीं से कहीं पहुँच जावें। हम कहाँ से कहाँ पहुँच सकते हैं, इसके लिए नीचे कुछ संकेत दिये गये हैं उन पर ध्यान दें–

तीसरे अध्याय के चौथे सूत्र में आये '**परस्परो–दीरित दुःखाः**'' के स्थान पर पाँचवें अध्याय के 21वें सूत्र में आये '**परस्परोपग्रहो जीवानाम्**' पर पहुँच जाते हैं।

इसी प्रकार जो जहाँ से जहाँ पहुँच जावे, वह स्वयं अनुमान लगावे। जहाँ आप भूलते हैं वहाँ पर पाठ करते समय विशेष ध्यान रखें ताकि पाठ का सही–सही फल प्राप्त हो सके।

साभार–आर्यिका विज्ञानमति

अनुक्रमणिका

1.	तीन लोक के बारे में क्यों समझे ?	1
2.	तीन लोक कौन–कौन से है ? तीनों लोकों के आकार ?	1
3.	लोकाकाश	2
4.	लोक का घनफल 343 घनराजू कैसे ?	3
5.	योजन एवं राजू विधान	4
6.	त्रसनाली	5
7.	वातवलय	6
8.	अधोलोक	10
9.	सात नरकों के नाम	11
10.	नरकों में बिलों की संख्या	13
11.	नरकों में रहने वाले नारकियों की विशेषताएँ	27
12.	नारकियों के अन्य दु:ख	31
13.	असुरों द्वारा प्रदत्त दु:ख	31
14.	नारकियों की आयु कितनी ?	32
15.	नरकों का विशेष वर्णन	33
16.	नरकायु का बंध कौन करता है ?	35
17.	मध्यलोक	36
18.	द्वीप–समुद्रों के नाम	36
19.	द्वीप–समुद्रों का विस्तार व स्थिति	36
20.	जम्बूद्वीप की स्थिति व विस्तार	43
21.	सात क्षेत्रों के नाम	54
22.	क्षेत्रों के विभाजक षट् कुलाचल पर्वतों के नाम	68

23. पर्वतों के रंग 68
24. पर्वतों की अन्य विशेषताएँ 68
25. पर्वतों पर स्थित सरोवरों के नाम 71
26. प्रथम तालाब की लम्बाई–चौड़ाई 71
27. प्रथम सरोवर की गहराई 71
28. पद्म तालाब के मध्य में क्या है? 74
29. आगे के तालाब और कमलों का विस्तार आदि 74
30. कमलों पर रहने वाली देवियों के नाम, आयु और परिवार 74
31. नदियों के नाम 79
32. नदियों के बहने का क्रम 79
33. महानदियों की सहायक नदियाँ 80
34. भरत क्षेत्र का विस्तार 84
35. पर्वतों और क्षेत्रों का विस्तार 85
36. भरत और ऐरावत क्षेत्रों में काल परिवर्तन 89
37. शेष भूमियों की अवस्था 111
38. अवस्थित भूमियों में मनुष्यों की स्थिति 111
39. उत्तरवर्ती क्षेत्रों की स्थिति 111
40. मनुष्यों की उत्कृष्ट व जघन्य आयु 113
41. तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु 113
42. धातकीखण्ड द्वीप में क्षेत्र, पर्वत आदि की संख्या 121
43. अर्द्ध पुष्करद्वीप में क्षेत्र व पर्वत 121
44. मनुष्य लोक कहाँ तक है? 127
45. मनुष्यों के प्रकार 132
46. कर्मभूमियों के नाम 141

परिशिष्ट-

1. ईश्वर सृष्टिकर्तृत्व का निरसन एवं लोक के अनादिनिधन अकृत्रिमपने की सिद्धि 144
2. पुरुषाकार लोक 149
3. कुछ कम का प्रमाण $32162241\frac{2}{3}$ धनुष कैसे प्राप्त होता है। 150
4. यहाँ क्या–क्या करने वालों को नरकों में क्या–क्या दु:ख मिलते हैं? 151
5. जम्बूवृक्ष के परिवार वृक्ष 153
6. विजयार्ध पर्वत संबंधी 110 नगरियाँ 154
7. कुलकरों की कार्य व्यवस्था 155
8. कुलकरों के उत्सेध, आयु एवं अंतराल आदि का विवरण 157
9. चक्रवर्तियों का परिचय 159
10. चक्रवर्तियों का वैभव 160
11. चक्रवर्तियों के चौदह रत्नों का परिचय 162
12. चक्रवर्तियों की नव निधियाँ 164
13. बलभद्रों का परिचय 164
14. नारायणों का परिचय 165
15. रूद्रों का परिचय 166
16. वर्तमान चौबीसी के प्रसिद्ध पुरुष 167
17. मध्यलोक में 458 अकृत्रिम चैत्यालय 169
18. सूत्र पाठ 171

1. तीनलोक के बारे में क्यों समझे?

- जीव तत्त्व को विशेष जानने के लिये।
- तीनलोक की विशालता को समझने के लिये।
- संसार परिभ्रमण अर्थात् पंच परावर्तन को समझने के लिये।
- केवलज्ञान के माहात्म्य को जानने के लिये।
- चारों गतियों के ज्ञान के लिये।
- सर्वज्ञता के दृढ़ श्रद्धान के लिये।

2. तीन लोक कौन-कौन से हैं? तीनों लोकों के आकार

लोक	आकार	और क्या कहते?
1. अधोलोक	वेत्रासन के समान	नरक लोक
2. मध्यलोक	झालर के समान*	मनुष्यलोक या तिर्यग्लोक
3. ऊर्ध्वलोक	मृदंग के समान	स्वर्गलोक

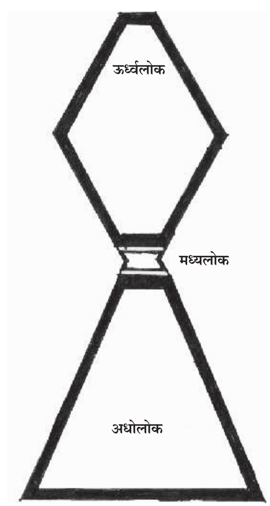

* मध्यलोक का आकार खड़े किये हुए अर्धमृदंग के ऊर्ध्वभाग के समान है।

लोकाकाश

स्थिति	अलोकाकाश के मध्य में
निवास	छहों द्रव्य
आकार	पुरुषाकार*, डेढ़ मृदंगाकार
ऊँचाई	14 राजू
चौड़ाई	अधोलोक में 7 राजू मध्यलोक में 1 राजू ब्रह्म स्वर्ग में (ऊर्ध्वलोक के मध्य में) 5 राजू लोक के अंत में 1 राजू
मोटाई	उत्तर–दक्षिण दिशा में पूर्व–पश्चिम दिशा में } 7 राजू मूल में
लोक का घनफल	343 घनराजू

जैसे:– 3 गिलास लीजिए एक को उल्टा रखें उसके ऊपर दूसरे गिलास को सीधा रखें एवं दूसरे गिलास के ऊपर तीसरे गिलास को उल्टा रखें यह जो आकार बनता है वह लोक का आकार है।

*परिशिष्ट–2, पुरुषाकार लोक पेज नं.–149

लोक का घनफल 343 घनराजू कैसे ?

विधि–1

7 + 1 + 5 + 1 = 14

14 ÷ 4 = 3.5

भुजा x कोटि x ऊँचाई = घनफल*

3.5 x 7 x 14

= 343

विधि–2

अधोलोक का घनफल

7 +1 = 8

8 ÷ 2 =4

7 x 7 x 4

= 196

ऊर्ध्वलोक का घनफल

1 + 5 = 6

6 ÷ 2 = 3

7 x 3.5 x 3

73.5 x 2

=147

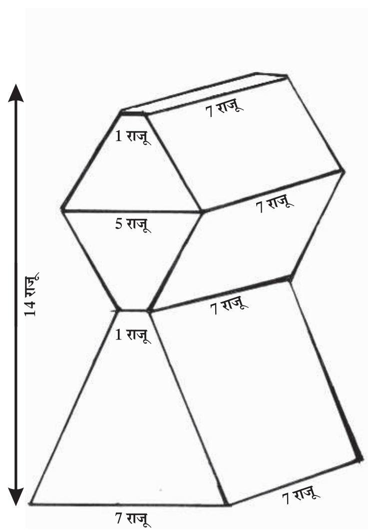

अधोलोक का घनफल + ऊर्ध्वलोक का घनफल

= 196 + 147

= 343

* भुजा–लम्बाई, कोटि–चौड़ाई

योजन एवं राजू विधान

6 अंगुल	–	1 पाद
2 पाद	–	1 विलस्त
2 विलस्त	–	1 हाथ
2 हाथ	–	1 रिक्कू
2 रिक्कू	–	1 दण्ड (4 हाथ)
4 हाथ	–	1 धनुष, मूसल, नाली
2 हजार दण्ड	–	1 कोस
4 कोस	–	1 योजन
1 कोस	–	2 मील
1 मील	–	1.5 कि.मी.

* एक योजन में कितने किलोमीटर?
  4 x 2 x 1.5 = 12 कि.मी.
* प्रमाण योजन निकालने के लिए 1 योजन में 500 किलोमीटर कर गुणा करेंगें।
  1 योजन = 12 कि.मी.
  500 x 12 = 6000 कि.मी.
  (इसे महायोजन भी कहते हैं)
* 1 राजू – असंख्यात योजन
  (जगत्श्रेणी का सातवाँ भाग)
* 1000 किलो भार का 1 गोला इन्द्रलोक से नीचे गिरकर 6 माह में जितनी दूरी तय करता है वह 1 राजू है।

त्रसनाली

त्रस जीवों के रहने का स्थान	
स्थिति	लोक के बिल्कुल मध्य में
ऊँचाई	कुछ कम 13 राजू
लम्बाई	1 राजू
चौड़ाई	1 राजू
घनफल	कुछ कम 13 घनराजू
आकार	ट्यूब लाइट का खोखा
निवास	2 से 5 इन्द्रिय जीव

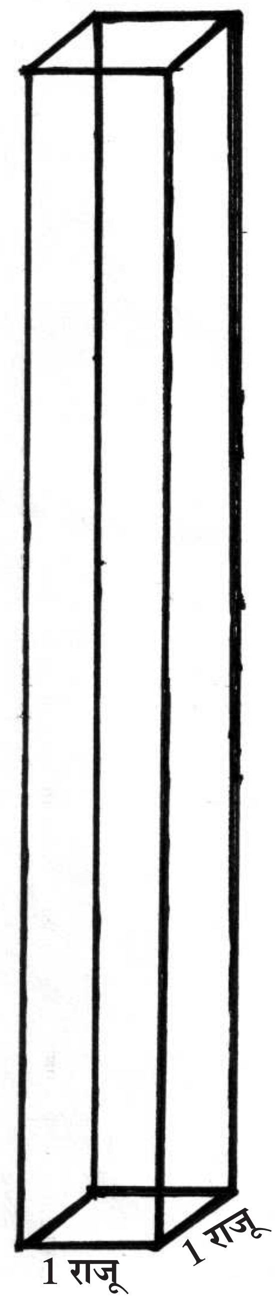

❊ वृक्ष में (स्थित) सार की तरह है।

❊ सूक्ष्म स्थावर जीव सर्वलोक में ठसाठस भरे हैं।

❊ त्रस जीव त्रसनाली में ही पाए जाते हैं।

❊ कुछ कम का प्रमाण $3,999\frac{1}{3}$ योजन अथवा $3,21,62,241\frac{2}{3}$ धनुष।

❊ परिशिष्ट-3, पेज नं 150
कुछ कम का प्रमाण $3216241\frac{2}{3}$ धनुष कैसे प्राप्त होता है?

वातवलय

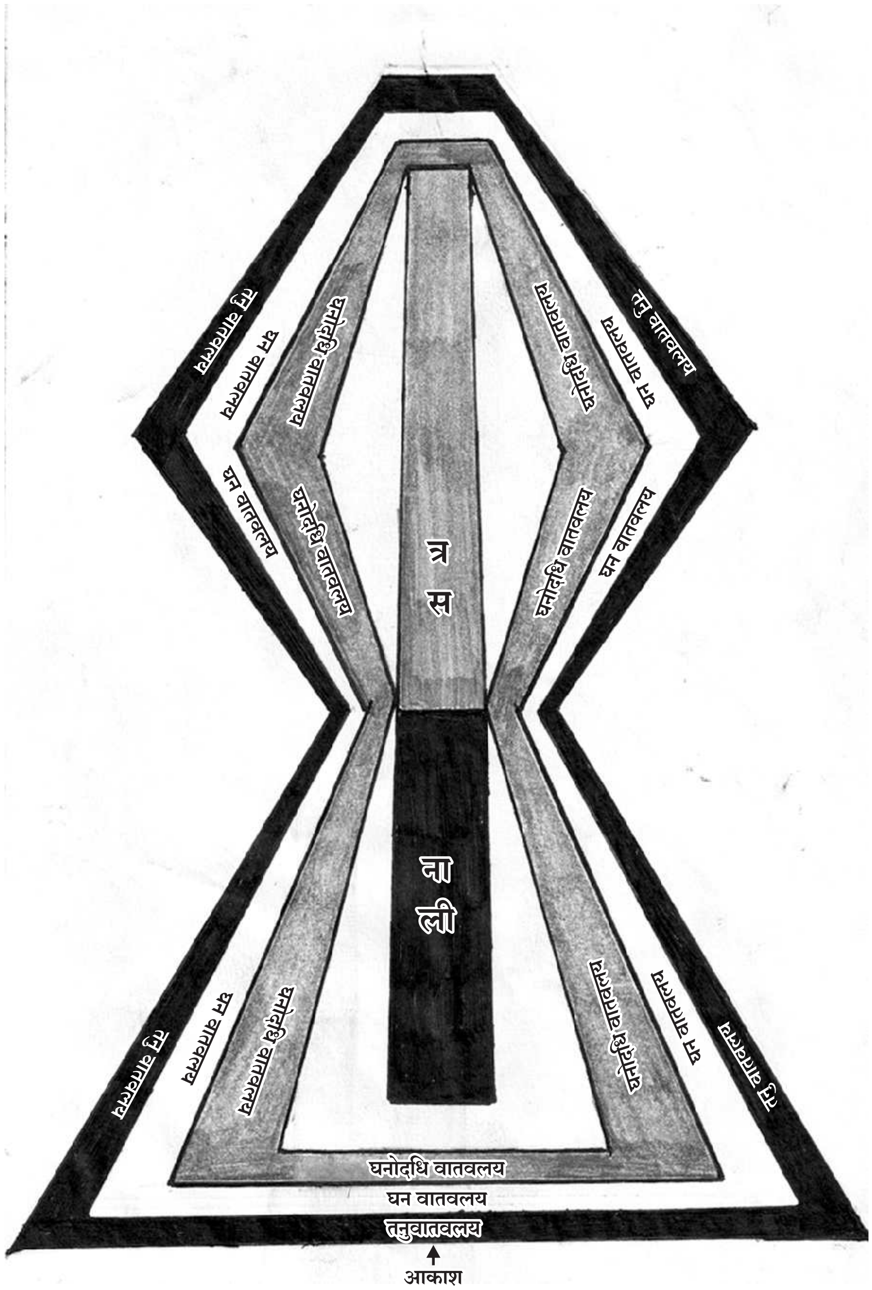

लोक के चारों ओर तीन वातवलय हैं।

※ वृक्ष के ऊपर त्वचा/ऊपरी छाल

※ अण्डे के ऊपर जाल।

※ शरीर के ऊपर चर्म/चमड़ी।

※ किसी वस्तु के ऊपर तीन लपेटा–सहित तीन तह का वेष्टन होता है। उसी प्रकार तीन लोक के ऊपर तीन वातवलय जानना चाहिए।

वायुकायिक जीवों के शरीर स्वरूप लोक को जो सब ओर से वेष्टित किये रहते हैं।

लोक का आधार	घनोदधि वातवलय	ठोसवायु + जल का घेरा	वाष्प	गोमूत्र समान
घनोदधि वातवलय का आधार	घन वातवलय	ठोस वायु का घेरा	मोटी हवा	मूंग समान
घन वातवलय का आधार	तनु वातवलय	पतली वायु का घेरा	पतली हवा	अव्यक्त (अनेक रंग) वाला
तनु वातवलय का आधार	आकाश	अधोलोक की सातों पृथ्वियाँ घनोदधि वातवलय के आधार से स्थित है।		

※ यह पृथ्वी कछुवे के आधार पर स्थित है या वराह/सूअर के दाँतों के ऊपर रखी है ? 3 वातवलय और आकाश के आधार पर नहीं है।

※ यह कथन अयुक्त है, क्योंकि कछुवा और वराह भी किसी अन्य के आधार से हैं, अत: अन्य आधारपने का प्रसंग आता है।

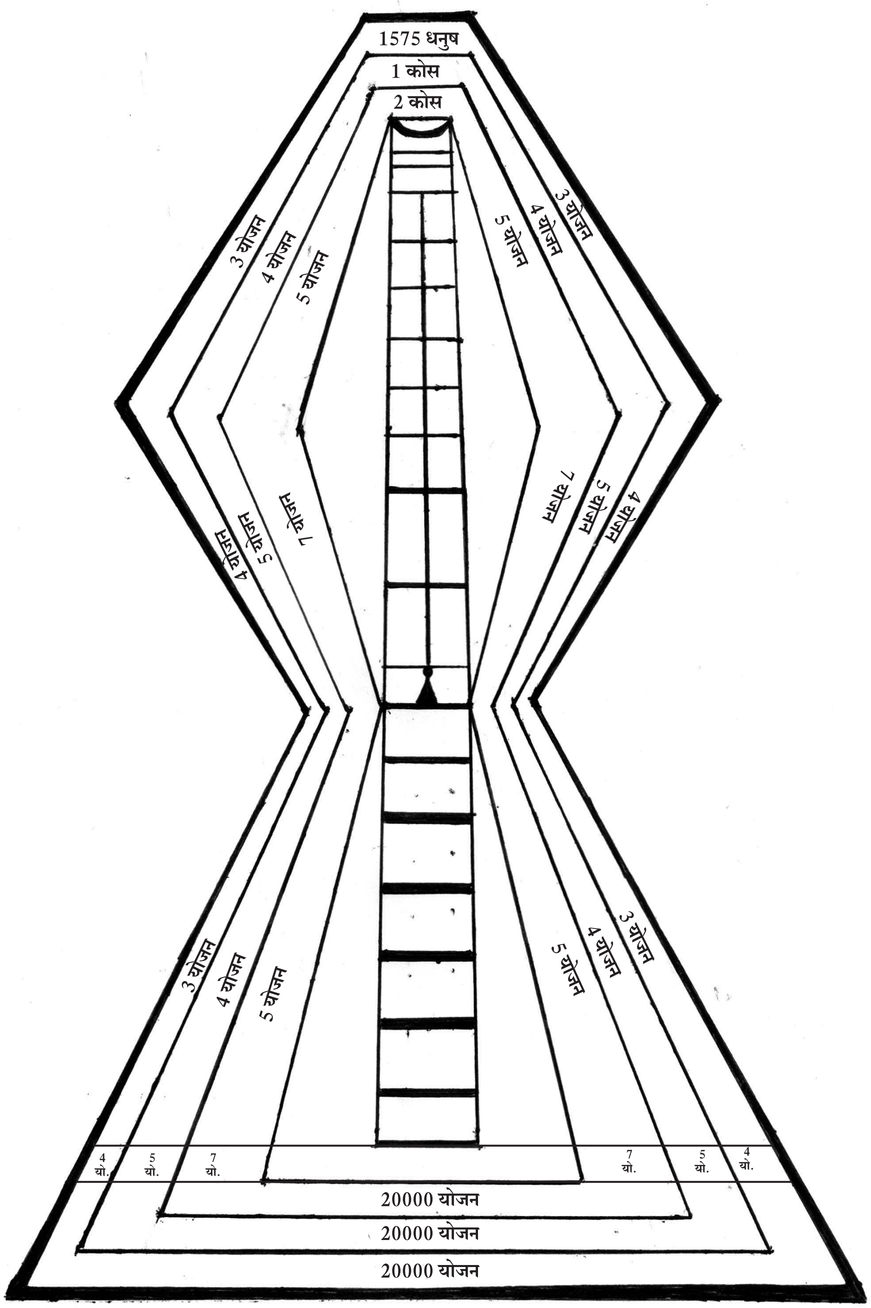

1575 धनुष
1 कोस
2 कोस
3 योजन
4 योजन
5 योजन
5 योजन
4 योजन
3 योजन
4 योजन
5 योजन
7 योजन
7 योजन
5 योजन
4 योजन
3 योजन
4 योजन
5 योजन
5 योजन
4 योजन
3 योजन
4 यो.
5 यो.
7 यो.
7 यो.
5 यो.
4 यो.
20000 योजन
20000 योजन
20000 योजन

वातवलय

कहाँ ?	घनोदधि वातवलय	घन वातवलय	तनु वातवलय
लोक के अधोभाग में	20000 योजन	20000 योजन	20000 योजन
सप्तम पृथ्वी के अंत में	7 योजन	5 योजन	4 योजन
मध्यलोक में	5 योजन	4 योजन	3 योजन
ब्रह्मलोक के समीप	7 योजन	5 योजन	4 योजन
लोक कें अंतिम भाग में	5 योजन	4 योजन	3 योजन
लोक के शिखर पर	2 कोस	1 कोस	1575 धनुष (कुछ कम 1 कोस)

* कुछ कम 1 कोस का प्रमाण क्या ? 425 धनुष
* 1 कोस = 2000 धनुष
* 2000−425=1575 धनुष

अधोलोक

लम्बाई, ऊँचाई	7 राजू सर्वत्र
मोटाई	7 राजू उत्तर दक्षिण में, पूर्व–पश्चिम में
चौड़ाई	मूल में 7 राजू, मध्य में 1 राजू
औसत चौड़ाई	7+1=8 ÷ 2 =4 राजू
अधोलोक का घनफल	196 घनराजू
स्थिति	मेरु की जड़ से नीचे
निवास	एकेन्द्रिय, नारकी,भवनवासी एवं व्यंतर देव
आकार	अर्द्ध मृदंगाकार
पृथ्वियाँ	सात

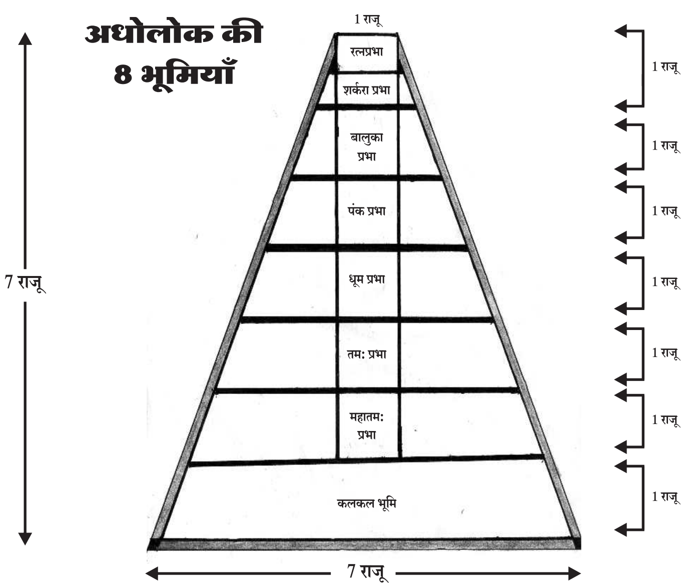

* अधोलोक का वर्णन सर्वप्रथम क्यों किया ?

- नारकियों की शीत–उष्ण रूप तीव्र वेदना को सुनकर जीव संसार से भयभीत हो जाये, इसलिए वैराग्य का कारण होने से सर्वप्रथम अधोलोक का वर्णन किया।

सात नरकों के नाम

रत्न – शर्करा – बालुका – पंक – धूम – तमो – महातमः – प्रभा– भूमयो–घनाम्बु–वाताकाश–प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः।।1।।

सूत्रार्थ – (रत्न–शर्करा–बालुका–पङ्क–धूमतमो–महातमः प्रभा) रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमः प्रभा ये (भूमयः) भूमियाँ (सप्त) सात हैं, और क्रम से (अधोऽधः) नीचे–नीचे (घनाम्बु–वाताकाशप्रतिष्ठा) घन–वातवलय, घनोदधिवात–वलय, तनुवातवलय और आकाश के आधार हैं।

नारकी किसे कहते हैं?

नारकी के पर्यायवाची – नारत, नरक, निरय, निरत।

ना + रत = स्वयं अथवा परस्पर प्रीति को प्राप्त नहीं होते।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में परस्पर रमते नहीं।

नरक – नरान् = प्राणियों को, कायन्ति = क्लेश पहुँचावें।

निरय – जिनका पुण्यकर्म चला गया है।

निरत – जो हिंसादि असमीचीन कार्यों में रत है।

रत्नप्रभा पृथ्वी

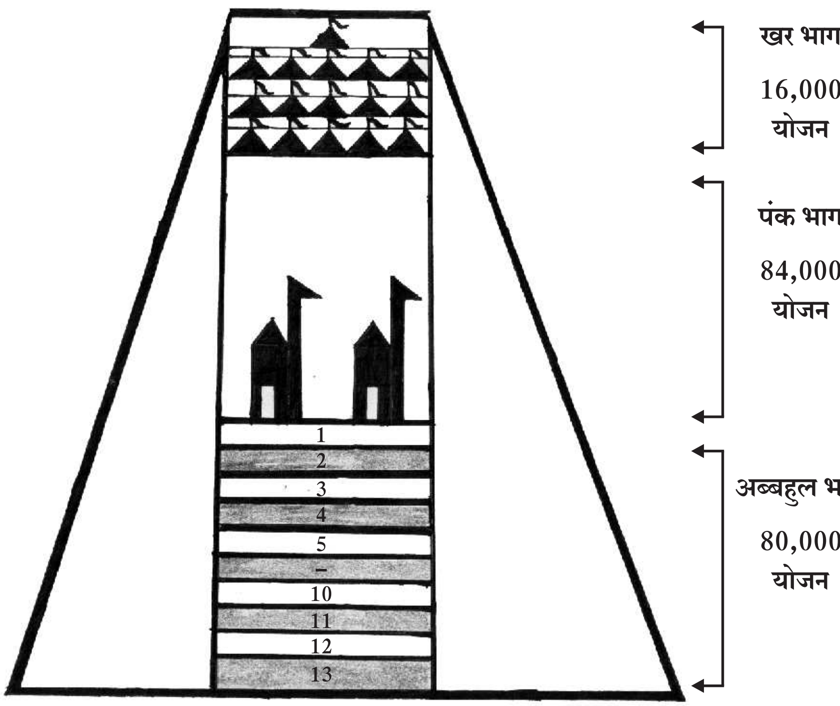

रत्नप्रभा पृथ्वी के 3 भाग

खर भाग	पंक भाग	अब्बहुल भाग
✻ 16,000 योजन (मोटाई) ✻ 14,000 योजन में 7 प्रकार के व्यंतर देव, और 9 प्रकार के भवनवासी देवों का निवास	✻ 84,000 योजन (मोटाई) ✻ व्यंतर जाति के राक्षस देव और भवनवासी के असुर-कुमार देवों का निवास	✻ 80,000 योजन (मोटाई) ✻ 78,000 योजन में नारकियों का निवास

* ''प्रभा'' शब्द का प्रयोग सातों भूमियों में ''प्रकाश की स्थिति'' बतलाने के लिऐ किया गया है।

1.	रत्नप्रभा	रत्नों के समान प्रभावली
2.	शर्कराप्रभा	शक्कर के समान प्रभावली
3.	बालुकाप्रभा	रेत के समान प्रभावली
4.	पंकप्रभा	कीचड़ के समान प्रभावली
5.	धूमप्रभा	धूआँ (धूम) के समान प्रभावली
6.	तम:प्रभा	अंधेरे के समान प्रभावली
7.	महातम:प्रभा	गाढ़ अन्धकार के समान प्रभावली

* ''प्रभा'' शब्द का प्रयोग सातों भूमियों में ''प्रकाश की स्थिति'' बतलाने के लिऐ किया गया है।

* ''अधोऽध:'' शब्द का प्रयोग सातों भूमियाँ एक–दूसरे के नीचे–नीचे हैं। यह बतलाने के लिए किया गया है।

नरकों में बिलों की संख्या

तासु त्रिंशत्पंचविंशति–पंचदश–दश–त्रि–पंचोनैक–नरक शत–सहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम्।।2।।

सूत्रार्थ– (तासु) उन भूमियों में (यथाक्रमम्) क्रमश: (त्रिंशत्पंचविंशति–पंचदश–दश–त्रिपंचोनैक नरक शतसहस्राणि) तीस लाख, पच्चीस लाख, पंद्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख, (च) और (पंच एव) पाँच ही बिल हैं।

* अत्यन्त भयावने घोर अंधकार वाले नरक बिल अत्यन्त दुर्गन्ध से भरे महान दुखदाई होते हैं।
* सभी बिल आपस में जुड़े हुए नहीं रहते जिससे एक बिल का नारकी दूसरे बिल में प्रवेश नहीं कर सकता।
* बिलों के दरवाजे नहीं होते।
* बिलों की दीवारें वज्र की होती है।
* सभी बिल अकृत्रिम और अविनश्वर हैं।

बिल
(नारकियों के रहने का स्थान)

- **रचना/आकार**
  - ढोल की पोल के समान
  - तलघर के समान
- **प्रकार**
  - इन्द्रक → (बीच का बिल)
  - श्रेणीबद्ध → कतारबद्ध (4 दिशा व 4 विदिशा में)
  - प्रकीर्णक → (बिखरे हुए अंतराल में)

– नोट –

* ये नरक बिल गोल, त्रिकोण, चौकोर इत्यादि विविध आकार वाले हैं।
* कुछ बिल संख्यात योजन और कुछ असंख्यात योजन लम्बे–चौड़े हैं।
* सभी इंद्रक बिल संख्यात योजन चौड़े हैं।
* श्रेणीबद्ध बिल पृथक्–पृथक् असंख्यात–असंख्यात योजन चौड़े हैं।
* प्रकीर्णक बिलों में से कुछ संख्यात योजन और कुछ असंख्यात योजन चौड़े हैं।

प्रथम नरक का प्रथम पटल

सीमन्तक इन्द्रक – 45 लाख योजन विस्तार
(ढ़ाई द्वीप के बराबर)

श्रेणीबद्ध बिल – असंख्यात योजन विस्तार वाले, दिशाओं में 49–49 विदिशाओं में 48–48

प्रकीर्णक – संख्यात, असंख्यात योजन विस्तार
प्रथम नरक के 13 पटलों के 30 लाख बिल

इन्द्रक		13
श्रेणीबद्ध		4420
प्रकीर्णक	+	2995567
कुल		3000000

प्रथम नरक का सीमन्तक बिल

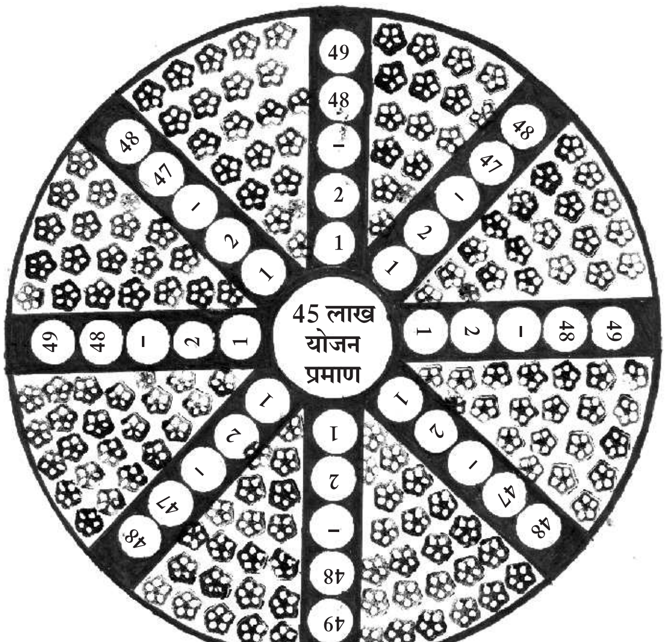

सातों पृथ्वियों के 49 पटल एवं मोटाई

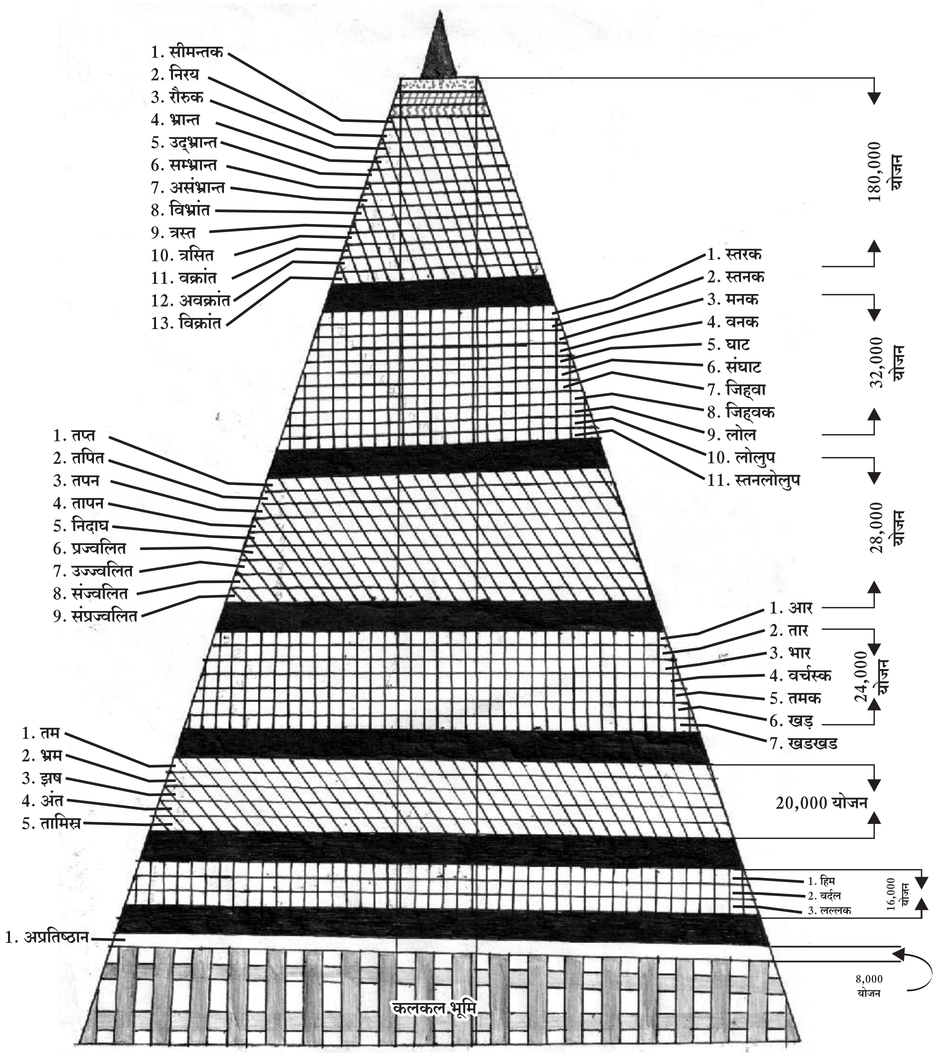

रत्नप्रभा पृथ्वी के 30,00000 बिल

विधि–1

क्र.	पटल	दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	विदिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	योग
1.	सीमन्तक	49 x 4 = 196	48 x 4 = 192	196+192=388
2.	निरय	48 x 4 = 192	47 x 4 = 188	192+188=380
3.	रौरुक	47 x 4 = 188	46 x 4 = 184	188+184=372
4.	भ्रान्त	46 x 4 = 184	45 x 4 = 180	184+180=364
5.	उद्भ्रान्त	45 x 4 = 180	44 x 4 = 176	180+176=356
6.	संभ्रान्त	44 x 4 = 176	43 x 4 = 172	176+172=348
7.	असंभ्रान्त	43 x 4 = 172	42 x 4 = 168	172+168=340
8.	विभ्रान्त	42 x 4 = 168	41 x 4 = 164	168+164=332
9.	त्रस्त	41 x 4 = 164	40 x 4 = 160	164+160=324
10.	त्रसित	40 x 4 = 160	39 x 4 = 156	160+156=316
11.	वक्रान्त	39 x 4 = 156	38 x 4 = 152	156+152=308
12.	अवक्रान्त	38 x 4 = 152	37 x 4 = 148	152+148=300
13.	विक्रांत	37 x 4 = 148	36 x 4 = 144	148+144=292
	योग	2,236	2,184	4,420

सर्व बिल – (इन्द्रक बिल + श्रेणीबद्ध) = प्रकीर्णक बिल

30,00,000 – 13 + 4420 = 29,95,567

विधि–2

49+48 =97

97X4 = 388

49–12 = 37

(रत्नप्रभा के अंतिम पटल सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिलों को निकालने की विधि)

37+36 = 73

73X4 = 292

भूमि + मुख ÷ 2 X पद

388+292 ÷ 2X13

680 ÷ 2 X 13

340 X 13

4420

- आदि और अंत स्थान में जो हीन प्रमाण होता है उसे मुख (वदन/प्रभव) कहते है।
- अधिक प्रमाण को भूमि कहते है।
- स्थान को पद (गच्छ) कहते है।

2. शर्करा प्रभा पृथ्वी के 25,00,000 बिल

क्र.	पटल	दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	विदिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	योग
1.	स्तरक	36x4 = 144	35x4 = 140	144+140=284
2.	स्तनक	35x4 = 140	34x4 = 136	140+136=276
3.	मनक	34x4 = 136	33x4 = 132	136+132=268
4.	वनक	33x4 = 132	32x4 = 128	132+128=260
5.	घाट	32x4 = 128	31x4 = 124	128+124=252
6.	संघाट	31x4 = 124	30x4 = 120	124+120=244
7.	जिह्वा	30x4 = 120	29x4 = 116	120+116=236
8.	जिह्वक	29x4 = 116	28x4 = 112	116+112=228
9.	लोल	28x4 = 112	27x4 = 108	112+108=220
10.	लोलुप	27x4 = 108	26x4 = 104	108+104=212
11.	स्तनलोलुप	26x4 = 104	25x4 = 100	104+100=204
	योग	1,364	1,320	2684

सर्व बिल – (इन्द्रक बिल + श्रेणीबद्ध बिल) = प्रकीर्णक बिल

25,00,000 – 11 + 2,684 = 24,97,305

विधि–2

36+35=71

71x4=284

36–10=26

26+25=51

(शर्करा प्रभा के अंतिम पटल के श्रेणीबद्ध बिलों को निकालने की विधि)

51x4=204

भूमि+मुख÷2xपद

284+204÷2x11

488÷2x11

244x11

2,684

* पद में से 1 घटाकर चय से गुणित कर जो लब्ध आवे उसे मुख में जोड़ने से भूमि और भूमि में से घटा देने पर मुख का प्रमाण प्राप्त होता है।

3. बालुका प्रभा पृथ्वी के 15,00,000 बिल

विधि – 1

क्र.	पटल	दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	विदिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	योग
1.	तप्त	25x4 = 100	24x4 = 96	100+96=196
2.	तपित	24x4 = 96	23x4 = 92	96+92=188
3.	तपन	23x4 = 92	22x4 = 88	92+88=180
4.	तापन	22x4 = 88	21x4 = 84	88+84=172
5.	निदाघ	21x4 = 84	20x4 = 80	84+80=164
6.	प्रज्वलित	20x4 = 80	19x4 = 76	80+76=156
7.	उज्ज्वलित	19x4 = 76	18x4 = 72	76+72=148
8.	संज्वलित	18x4 = 72	17x4 = 68	72+68=140
9.	संप्रज्वलित	17x4 = 68	16x4 = 64	68+64=132
	योग	756	720	1,476

सर्व बिल – (इन्द्रक बिल + श्रेणीबद्ध बिल) = प्रकीर्णक बिल

15,00,000 – 9 + 1476 = 14,98,515

विधि–2

25+24=49

49x4=196

25–8=17

(बालुकाप्रभा पृथ्वी के अंतिम पटल के श्रेणीबद्ध बिलों को निकालने की विधि)

17+16=33

33x4=132

भूमि+मुख÷2xपद

196+132÷2x9

328÷2x9

164x9

1476

4. पंक प्रभा पृथ्वी के 10,00,000 बिल

विधि–1

क्र.	पटल	दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	विदिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	योग
1.	आर	16x4 = 64	15x4 = 60	64+60=124
2.	तार	15x4 = 60	14x4 = 56	60+56=116
3.	भार	14x4 = 56	13x4 = 52	56+52=108
4.	वर्चस्क	13x4 = 52	12x4 = 48	52+48=100
5.	तमक	12x4 = 48	11x4 = 44	48+44=92
6.	खड	11x4 = 44	10 x4 = 40	44+40=84
7.	खडखड	10x4 = 40	09 x4 = 36	40+36=76
	योग	364	336	700

सर्व बिल – (इन्द्रक बिल + श्रेणीबद्ध बिल) = प्रकीर्णक बिल

10,00,000 – 7 + 700 = 9,99,293

विधि–2

16+15=31

31x4=124

16–6=10

(पंकप्रभा पृथ्वी के अंतिम पटल के श्रेणीबद्ध बिलों को निकालने की विधि)

10+9=19

19x4=76

भूमि+मुख÷2xपद

124+76÷2x7

200÷2x7

100x7

700

5. धूमप्रभा पृथ्वी के 3,00,000 बिल

विधि–1

क्र.	पटल	दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	विदिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	योग
1.	तम	09x4 =36	08 x4 = 32	36+32=68
2.	भ्रम	08x4 =32	07 x4 = 28	32+28=60
3.	झष	07x4 = 28	06 x4 = 24	28+24=52
4.	अन्त	06x4 = 24	05 x4 = 20	24+20=44
5.	तामिस्र	05x4 = 20	04x4 = 16	20+16=36
	योग	140	120	260

सर्व बिल – (इन्द्रक बिल + श्रेणीबद्ध बिल) = प्रकीर्णक बिल

3,00,000 – 5 + 260 = 2,99,735

विधि–2

9+8=17

17x4=68

(धूमप्रभा पृथ्वी के अंतिम पटल के श्रेणीबद्ध बिलों को निकालने की विधि)

9–4=5

5+4=9

9x4=36

भूमि+मुख÷2xपद

68+36÷2x5

104÷2x5

52x5

260

6. तम:प्रभा पृथ्वी के 99,995 बिल

विधि–1

क्र.	पटल	दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	विदिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	योग
1.	हिम	04x4 =16	03x4 = 12	16+12=28
2.	वर्दल	03x4 =12	02x4 = 8	12+8 =20
3.	लल्लक	02x4 =8	01x4 = 4	8+4 =12
	योग	36	24	60

सर्व बिल – (इन्द्रक बिल + श्रेणीबद्ध बिल) = प्रकीर्णक बिल

99,995 – 3 + 60 = 99,932

7. महातम:प्रभा पृथ्वी के 5 बिल

क्र.	पटल	दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	विदिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध बिल	योग
1.	अप्रतिष्ठान	1x4 =4	0x4 = 0	4+0=4

सर्व बिल – (इन्द्रक बिल + श्रेणीबद्ध बिल) = प्रकीर्णक बिल

5 – 1 + 4 = 0

विधि–2

4+3=7

7x4=28

3–1=2

(तम:प्रभा पृथ्वी के अंतिम पटल के श्रेणीबद्ध बिलों को निकालने की विधि)

2+1=3

3x4=12

भूमि+मुख÷2xपद

28+12÷2x3

40÷2x3

20x3

60

सातवें नरक का पटल

अप्रतिष्ठान इन्द्रक	–	1 लाख योजन विस्तार (जम्बूद्वीप के बराबर)
श्रेणीबद्ध बिल	–	असंख्यात योजन विस्तार दिशाओं में 5, विदिशाओं में 0
प्रकीर्णक	–	नहीं होते

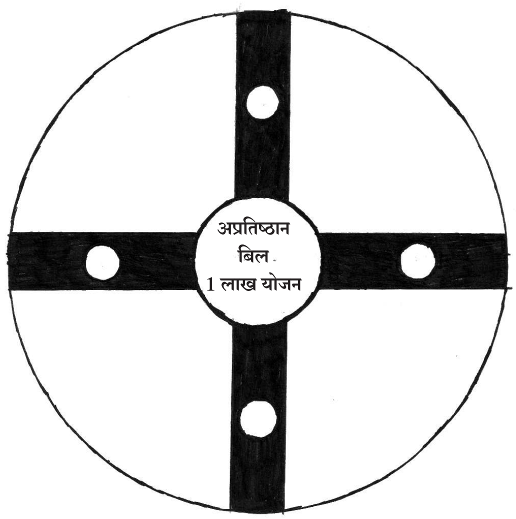

श्रेणीबद्ध बिल निकालने का करण सूत्र

4 x (99–2n)

n = पटल का क्रमांक

उदाहरण = असंभ्रान्त का पटल (क्रमांक–7)

सूत्र = 4 x (99–2n)

बिलों की संख्या = 4 x (99–2x7)

= 4 x (99–14)

= 4 x (85)

= 340

सातों पृथ्वियों के बिल

क्र.	पृथ्वी	पटल/प्रस्तार	इन्द्रक बिल	श्रेणीबद्ध बिल	प्रकीर्णक बिल	योग
1.	रत्नप्रभा	13	13	4420	29,95,567	30,00,000
2.	शर्कराप्रभा	11	11	2684	24,97,305	25,00,000
3.	बालुकाप्रभा	9	9	1476	14,98,515	15,00,000
4.	पंकप्रभा	7	7	700	9,99,293	10,00,000
5.	धूमप्रभा	5	5	260	2,99,735	3,00,000
6.	तम:प्रभा	3	3	60	99,932	99,995
7.	महातमप्रभा	1	1	4	0	5
		49	49	9,604	83,90,347	84,00,000

उदाहरण–जिस प्रकार मनुष्य लोक में कोई बड़ा भवन या महल बना हो, उसमें सबसे बीच में बड़ा कमरा हो, और उसकी आठों दिशाओं–विदिशाओं में कमरे बने हों, तथा कुछ कमरे यत्र–तत्र अंतराल में बिना क्रम के बने हों उसी प्रकार नरकों में बिल होते हैं।

उपपाद स्थानों का आकार

पहली, दूसरी, तीसरी भूमि सम्बन्धी	चौथी, पाँचवी भूमि सम्बन्धी	छठवी, सातवी भूमि सम्बन्धी
कड़ाही, कुम्भी, नाली मुद्गर, मृदंग/ढोल, आदि के समान	द्रौणी/दोना, गाय, गज, घोड़ा, भैंस, ऊँट आदि के मुख समान	झालर, भल्लर, पात्री, केयूर, मयूर, शाणक इत्यादि के समान

नारकियों के उत्पत्ति स्थान

* नारकी जीव मधुमक्खियों के छत्ते के समान लटकते हुए घृणित स्थानों में नीचे की ओर मुख करके पैदा होते हैं।
* उनके जन्मस्थानों के ठीक नीचे तलवार, भाला, मूसलादि 36 प्रकार के शस्त्र गड़े रहते हैं, उन्हीं पर वे गेंद के समान अंतर्मुहूर्त तक उछलते रहते हैं।
* गिरते ही नारकी का समस्त शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है फिर शरीर मिल जाता है, पुनः खण्ड़-खण्ड़ हो जाता है।
* मरने के बाद नारकियों के शरीर हवा से नष्ट हुए मेघ के समान विलीन हो जाते हैं।
* नारकों में भयानक दुःख और चीरफाड़ होने पर भी असमय में मृत्यु नहीं होती, क्योंकि वहाँ अकाल मरण नहीं होता।

नरक के उपपाद स्थान का विस्तार एवं नारकियों की उछलन

क्र.	पृथ्वी	उपपाद स्थान का विस्तार	ऊँचाई	उछलन
1	रत्नप्रभा	1 कोस	5 कोस	7 योजन 3¼ कोश
2	शर्कराप्रभा	2 कोस	10 कोस	15 योजन 2½ कोश
3	बालुकाप्रभा	3 कोस	15 कोस	31 योजन 1 कोश
4	पंकप्रभा	1 योजन (4 कोस)	5 योजन (20 कोस)	62 योजन ½ कोश
5	धूमप्रभा	2 योजन (8 कोस)	10 योजन (40 कोस)	125 योजन
6	तम:प्रभा	3 योजन (12 कोस)	15 योजन (60 कोस)	250 योजन
7	महातम:प्रभा	100 योजन (400 कोस)	500 योजन (2000 कोस)	500 योजन

नोट – 1 योजन = 2000 कोस

नरकों में रहने वाले नारकियों की विशेषताएँ

नारका: नित्याशुभ–तर–लेश्या–परिणाम–देह–वेदना–विक्रिया:।।3।।

सूत्रार्थ–(नारका:) नारकी जीव (नित्याशुभतरलेश्या–परिणाम–देह–वेदना–विक्रिया:) निरन्तर अशुभतर लेश्या, अशुभतर परिणाम, अशुभतर देह, अशुभतर वेदना और अशुभतर विक्रिया वाले होते हैं।

* नारकियों में 5 प्रकार से अशुभतरपना है–

1. लेश्या 2. परिणाम 3. देह 4. वेदना 5. विक्रिया।

लेश्या –

* तिर्यञ्चों की लेश्या से भी अशुभ।
* नीचे–नीचे के नरकों में अशुभ लेश्या की प्रकर्षता से अधिक–अधिक संक्लेश भाव होते हैं।

क्र.	पृथ्वी	लेश्या
1	रत्नप्रभा	जघन्य कापोत
2	शर्कराप्रभा	मध्यम कापोत
3	बालुकाप्रभा	उत्कृष्ट कापोत, जघन्य नील
4	पंकप्रभा	मध्यम नील
5	धूमप्रभा	उत्कृष्ट नील, जघन्य कृष्ण
6	तम:प्रभा	मध्यम कृष्ण
7	महातम:प्रभा	उत्कृष्ट कृष्ण

अशुभ लेश्याओं के लक्षण

कृष्ण लेश्या

- नित्य आर्त्त – रौद्र ध्यान करता रहता है।
- आतंकवादी, नृशंस हत्यारे एवं हिंसक प्रकृति के लोग अत्यंत संवेदनाहीन होते हैं, अत: उन्हें कृष्ण लेश्या वाला कहा है।
- छोटी–छोटी बातों पर बैर मोल लेता है।
- धर्म और दया को नहीं मानता।
- किसी की कोई बात सहन नहीं कर सकता।
- हमेशा हिंसा करने में तत्पर रहता है।

नील लेश्या

- आलसी।
- आत्महित समझने में मंदबुद्धि।
- कायर और घमण्डी।
- अभिमान के वश स्वयं मरने और दूसरों को मारने में उतारू।
- बिना मतलब झगड़ा मोल लेना।

कापोत लेश्या –

- दामाद के समान ''क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा, रुष्टा–तुष्टा क्षणे–क्षणे'' क्षण में रुष्ट और क्षण में संतुष्ट होने वाला।
- हमेशा रोते और रुलाते रहने की आदत।
- परनिन्दा और आत्मप्रशंसा करने में आनंद मानना।

अशुभतर परिणाम

✻ नीचे –नीचे के नरकों का स्पर्श, रस, गंध और वर्ण अशुभ – अशुभ है।

स्पर्श – नारकियों के शरीर का स्पर्श करोंत और गोखरू आदि पदार्थों के जैसा होता है।

● एक साथ हजारों बिच्छुओं के काटने पर जो वेदना होती है, उससे भी अधिक वेदना नरक भूमि के स्पर्श मात्र से होती है।

रस – उनके शरीर कड़वी तूम्बी और काञ्जीर से भी अधिक कड़वे रस वाले हैं।

गंध – कुत्ता, बिल्ली, गधा, ऊँट और सर्प आदि जानवरों के मरे हुए शरीरों में जो दुर्गन्ध आती है उससे भी कहीं अधिक दुस्सह और घृणास्पद दुर्गन्ध उन नारकी जीवों के शरीरों से आती है।

नरकों में इतनी दुर्गंध होती है कि वह यदि मनुष्य लोक में आ जाये तो कोसों के समस्त जीवन मर जायें।

कितने–कितने कोस तक के जीव ?

क्र.	पृथ्वी	कितने कोस तक
1	रत्नप्रभा	1 कोस
2	शर्कराप्रभा	1½ कोस
3	बालुकाप्रभा	2 कोस
4	पंकप्रभा	2½ कोस
5	धूमप्रभा	3 कोस
6	तम:प्रभा	3½ कोस
7	महातम:प्रभा	4 कोस

वर्ण–उनका हुण्डक संस्थान, क्रूर और भयंकर होता है।

वेदना

✻ यदि 1 लाख योजन सुमेरु के बराबर लोहे का उष्ण गोला नरक के शीत बिलों में डाला जावे तो नीचे पहुँचने के पहले ही नमक के टुकड़े के समान गलकर समाप्त हो जाये।

✻ नरकों में 1 लाख योजन सुमेरु के बराबर लोहे का शीत गोला नरक के उष्ण बिलों में डाला जावे तो नीचे पहुँचने के पहले ही गल जाये।

नरकों के उष्ण–शीत बिल

क्र.	पृथ्वी	उष्ण बिल
1	रत्नप्रभा	30,00,000
2	शर्कराप्रभा	25,00,000
3	बालुकाप्रभा	15,00,000
4	पंकप्रभा	10,00,000
5	धूमप्रभा	2,25,000
		82,25,000

क्र.	पृथ्वी	शीत बिल
5	धूमप्रभा	75,000
6	तम:प्रभा	99,995
7	महातम:प्रभा	5
		1,75,000

नोट :– पाँचवीं ''धूमप्रभा'' पृथ्वी के $\frac{3}{4}$ भाग

$\frac{3,00,000x3}{4}$ = 2,25,000 बिल

और पाँचवीं पृथ्वी के $\frac{1}{4}$ भाग

$\frac{300000x1}{4}$ = 75,000 बिल शीत वेदना वाले हैं।

✻ क्षुधा वेदना भी इन नारकी जीवों को इतनी अधिक है कि तीन लोक प्रमाण अन्न का भक्षण करने पर भी वह शांत नहीं हो, परन्तु अन्न की एक कणिका भी उन्हें नहीं मिलती है।

✻ इन्हें तृषा वेदना भी इतनी अधिक है कि समस्त समुद्रों प्रमाण मीठा शीतल जल पीने पर भी प्यास की वेदना शान्त ना हो, परन्तु जल की एक बूँद भी उन्हें प्राप्त नहीं होती।

विक्रिया–

* नारकियों में अशुभ अपृथक् विक्रिया होती है।
* नारकी 1 समय में 1 ही शरीर बना सकते हैं।

नारकियों के अन्य दु:ख

परस्परोदीरित–दु:खा:।।4।।

सूत्रार्थ–वे परस्पर उत्पन्न किये गये दु:ख वाले होते हैं।

* जैसे व्याघ्र मृग के बच्चे को देखकर उस पर झपटता है, वैसे ही क्रूर परिणाम वाले पुराने नारकी नये नारकी को देखकर धमकाते हुए उसकी ओर दौड़ते हैं।
* जिस प्रकार कुत्तों के झुण्ड एक–दूसरे को दारुण दु:ख देते हैं। उसी प्रकार वे नारकी भी नित्य ही परस्पर एक–दूसरे को दु:ख देते हैं।

असुरों द्वारा प्रदत्त दु:ख

संक्लिष्टासुरोदीरित–दु:खाश्च प्राक् चतुर्थ्या:।।5।।

सूत्रार्थ–(प्राक्चतुर्थ्या:) चौथी भूमि से पहले तक वे (संक्लिष्टासुरो दीरित) संक्लिष्ट असुरों के द्वारा उत्पन्न किये गये (दु:खाश्च) दु:ख वाले भी होते हैं।

* तीसरे नरक तक अम्बावरीश नामक असुरकुमार जाति के देव नारकियों को परस्पर पूर्वबद्ध वैर स्मरण कराकर लड़ाते हैं।
* नारकियों को परस्पर कलह करते देखकर असुरों को सुख होता है।
* ये असुर नारकियों को कोतूहलवश उन्हें आपस में भिड़ा देते हैं और उनका घात–प्रत्याघात देखकर मजा लूटते हैं।

---

* परिशिष्ट–3 यहाँ क्या–क्या करने वालों को नरकों में क्या–क्या दु:ख मिलते हैं? पेज नं. 151

* तप्तायमान लोहमयी पुत्तलिका का आलिंगन, तपाये हुये तैल का सेचन, तेल की कढ़ाई में पकाना आदि दु:ख भी असुरकुमार जाति के देव उत्पन्न कराते हैं।*

* असुरकुमार संक्लिष्ट क्यों कहलाते हैं ?

* पूर्व जन्म में किये गये अतितीव्र संक्लेशरूप परिणामों से उन्होंने जो पाप कर्म उपार्जित किया उसके उदय से निरन्तर क्लिष्ट करते हैं, अत: संक्लिष्ट कहलाते हैं।

नारकियों की आयु कितनी ?

तेष्वेक–त्रि–सप्त–दश–सप्तदश–द्वाविंशति–त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थिति:।।6।।

सूत्रार्थ–(तेषु) उन नरकों में (एक–त्रि–सप्त–दश–सप्तदश–द्वाविंशति–त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्वानां परास्थिति:) नारकियों की उत्कृष्ट आयु क्रम से एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रहसागर, बाईस सागर और तैंतीस सागर है।

---

* कहीं–कहीं ऐसा कथन भी मिलता है कि असुरकुमार नारकियों को आपस में लड़ाते ही नहीं, अपितु स्वयं भी मारते हैं उठाकर फेंकते हैं।

नरकों का विशेष वर्णन

क्र.	पृथ्वियों के सार्थक नाम	रूढ़ी नाम	पृथ्वियों की मोटाई	अवधिज्ञान
				उत्कृष्ट क्षेत्र
1	रत्नप्रभा	धम्मा	1,80,000	4 कोस
2	शर्कराप्रभा	वंशा	32,000	3½ कोस
3	बालुकाप्रभा	मेघा	28,000	3 कोस
4	पंकप्रभा	अंजना	24,000	2½ कोस
5	धूमप्रभा	अरिष्टा	20,000	2 कोस
6	तम:प्रभा	मघवा	16,000	1½ कोस
7	महातम:प्रभा	माघवी	8,000	1 कोस

* सातों पृथ्वियों में अवधिज्ञान का उत्कृष्ट काल ''अंतर्मुहूर्त'' है।

क्र. सं.	शरीर की उत्कृष्ट ऊँचाई	आयु	
		उत्कृष्ट काल	जघन्य काल
1	7 धनुष, 3 हाथ, 6 अंगुल	1 सागर	10 हजार वर्ष
2	15 धनुष, 2 हाथ, 12 अंगुल	3 सागर	1 सागर
3	31 धनुष, 1 हाथ	7 सागर	3 सागर
4	62 धनुष 2 हाथ	10 सागर	7 सागर
5	125 धनुष	17 सागर	10 सागर
6	250 धनुष	22 सागर	17 सागर
7	500 धनुष	33 सागर	22 सागर

क्र.	जन्म का अन्तर	उसी नरक में निरन्तर कितनी बार जन्म (अधिक से अधिक)	कौन कहाँ तक जा सकता
1	24 मुहूर्त का	8 बार	असैनी पंचेन्द्रिय
2	7 दिन का	7 बार	गोह, सरीसर्प
3	15 दिन का	6 बार	पक्षी
4	1 मास का	5 बार	सर्प
5	2 मास का	4 बार	सिंह
6	4 मास का	3 बार	स्त्री
7	6 मास का	2 बार	पुरुष, मत्स्य

क्र.	सम्यक्त्व के कारण			किस नरक से निकल कर क्या नहीं होता
1.	जाति स्मरण	वेदना	उपदेश	नारायण, बलभद्र, चक्रवर्ती
2.	,,	,,	,,	" " "
3.	,,	,,	,,	" " "
4.	,,	,,	x	तीर्थंकर
5.	,,	,,	x	चरम शरीरी
6.	,,	,,	x	भावलिंगी मुनि
7.	,,	,,	x	देशव्रती

नोट :– * नारकी जीव सीधा उसी नरक में जन्म नहीं लेता, यह नियम है यहाँ निरनतर जन्म से अभिप्राय नरक से निकल कर मनुष्य या पशु योनि में जन्म लेकर पुन: नरक में जाने की अपेक्षा से है।

*	1 मुहूर्त	=	48 मिनिट
	24x48	=	1152 मिनिट
		=	19 घंटा 12 मिनिट

नरकायु का बंध कौन करता है?

1. दुष्ट स्वभाव वाले जीव, 2. हिंसा करने वाले जीव,
3. तस्कर, 4. अत्यन्त लोभी, अत्यन्त मोही,
5. महापापी 6. क्रूर स्वभावी,
7. अति परिग्रही, असत्यवादी, 8. निर्लज्ज,
9. अत्यन्त कामी, परस्त्री लम्पटी,
10. तीव क्रोधी, 11. जीवों का शिकार करने वाले,
12. सम्यक्त्व एवं संयम से भ्रष्ट, 13. धर्म से रहित,
14. मांसाहारी, शराबी, कुव्यसन के सेवी,
15. पराये धन का हरण करने वाले,
16. धोखा देकर ठगने वाले,
17. यज्ञ में बलि देने वाले,
18. परद्रव्य का हरण करने वाले,
19. रात्रि में भोजन करने वाले,
20. स्त्री–बालक–वृद्ध और साधुओं के साथ विश्वासघात, करने वाले,
21. जिनधर्म के निन्दक
22. रौद्रध्यान करने वाले आदि।

मध्य लोक

- **कहाँ है** – (मेरु की जड़ से मेरु की चूलिका तक)
- **ऊँचाई** – (1 लाख 40 योजन)
- **लम्बाई** – (1 राजू)
- **चौड़ाई** – (1 राजू)
- **निवास**
  - ❊ मनुष्य
  - ❊ तिर्यंच
  - ❊ देव (भवनवासी व्यंतर, ज्योतिषी)
- **रचना**
  - **असंख्यात द्वीप – समुद्र**
    - – एक–दूसरे को घेरे हुए हैं।
    - – उत्तरोत्तर दूने–दूने व्यास वाले हैं।
    - – सभी शुभ नाम वाले हैं।
  - **4 कोने**

द्वीप–समुद्रों के नाम

जम्बूद्वीप–लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप–समुद्राः।।7।।

सूत्रार्थ– तिर्यक् लोक में (जम्बूद्वीप) जम्बूद्वीप (लवणोदादयः) लवणसमुद्र आदि (शुभनामानो) शुभ नाम वाले (द्वीप समुद्राः) असंख्यात द्वीप व समुद्र हैं।

द्वीप–समुद्रों का विस्तार व स्थिति

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व–पूर्व परिक्षेपिणो वलयाकृतयः।।8।।

सूत्रार्थ–प्रत्येक द्वीप समुद्र (द्विर्द्विर्विष्कम्भाः) दूने–दूने विस्तार वाले (पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो) पहले–पहले के द्वीप समुद्र को घेरे हुए तथा (वलयाकृतयः) चूड़ी के समान आकार वाले हैं।

- इन द्वीप समुद्रों का गणित शास्त्र बहुत गहन है। इसलिए इनकी गणना कहाँ तक की जायें ?

जम्बूद्वीप का विस्तार	1 लाख योजन	
लवण समुद्र का विस्तार	+ 2 लाख योजन	(इसमें 1 लाख और मिला देने से धातकीखण्ड द्वीप का विस्तार निकल आता है।)
	3 लाख योजन	
	+ 1 लाख योजन	
	4 लाख योजन	

- कालोदधि समुद्र का विस्तार कैसे निकाले ?

जम्बूद्वीप का विस्तार	1 लाख योजन
लवणसमुद्र का विस्तार	2 लाख योजन
धातकीखण्ड द्वीप का विस्तार	4 लाख योजन
	+1 लाख योजन
	8 लाख योजन

इसी प्रकार पूर्व–पूर्व के द्वीप–समुद्रों के प्रमाण में 1 लाख अधिक मिला देने से अंतिम स्वयम्भूरमण समुद्र के विस्तार का प्रमाण निकल आता है।

द्वीप–समुद्र के विस्तार निकालने का कारण सूत्र

द्वीप का विस्तार

सूत्र – 2^{2xn-2}

n = द्वीप अथवा समुद्र का क्रमांक

उदाहरण – कुण्डलपुर द्वीप (क्रमांक 11)

2^{2xn-2}

2^{2x11-2}

2^{22-2}

2^{20}

104856 लाख योजन

समुद्र का विस्तार

सूत्र – 2^{2xn-1}

उदाहरण – कुण्डलपुर द्वीप (क्रमांक 11)

2^{2xn-1}

2^{2x11-1}

2^{22-1}

2^{21}

2097152 लाख योजन

असंख्यात द्वीप-समुद्र

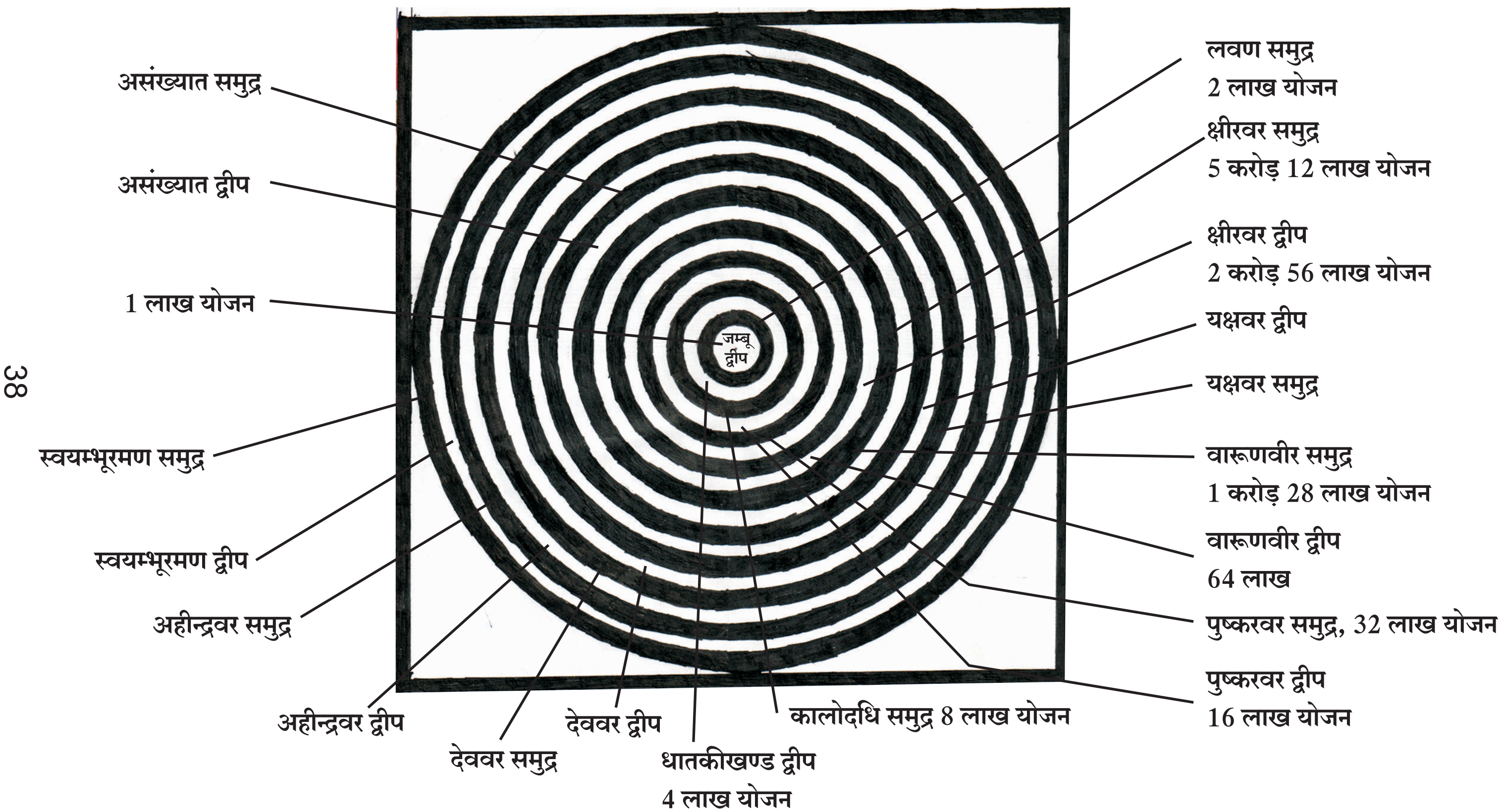

प्रारम्भ के 16 द्वीप एवं 16 समुद्रों के नाम एवं प्रमाण

क्र.	द्वीप	प्रमाण (योजन में)	समुद्र	प्रमाण (योजन में)
1.	जम्बू	1,00,000	लवण	2,00,000
2.	धातकीखण्ड	4,00,000	कालोदधि	8,00,000
3.	पुष्करवर	16,00,000	पुष्करवर	32,00,000
4.	वारुणवर	6400000	वारुणवर	1,28,00,000
5.	क्षीरवर	2,56,00,000	क्षीरवर	5,12,00,000
6.	घृतवर	10,24,00,000	घृतवर	20,48,00,000
7.	इक्षुवर (क्षौद्र)	40,96,00,000	इक्षुवर	81,92,00,000
8.	नंदीश्वर	16,38,40,0000	नंदीश्वर	3,27,68,00,000
9.	अरुणवर	6,55,36,00,000	अरुणवर	13,10,72,00,000
10.	अरुणाभासवर	26,21,44,00,000	अरुणाभासवर	52,42,88,00,000
11.	कुण्डलवर	1,04,85,76,00,000	कुण्डलवर	2,09,71,52,00,000
12.	शंखवर	4,19,43,04,00,000	शंखवर	8,38,86,08,00,000
13.	रुचकवर	16,77,72,16,00,000	रुचकवर	33,55,44,32,00,000
14.	भुजंगवर	67,10,88,64,00,000	भुजंगवर	1,34,21,77,28,00,000
15.	कुशवर	2,68,43,54,56,00,000	कुशवर	5,36,87,09,12,00,000
16.	क्रौंचवर	10,73,74,18,24,00,000	क्रौंचवर	21,47,48,36,48,00,000

अंतिम 16 द्वीपों के नाम

क्र.	द्वीप	क्र.	द्वीप
1.	मन: शिला	9.	वज्रवर
2.	हरिताल	10.	वैडूर्यवर
3.	सिन्दूरवर	11.	नागवार
4.	श्यामवर	12.	भूतवर
5.	अंजनवर	13.	यक्षवर
6.	हिंगुलिवर	14.	देववर
7.	रूप्यवर	15.	अहीन्द्रवर
8.	कांचनवर/सुवर्णवर	16.	स्वम्भूरमण

- द्वीपों के नाम के समान समुद्रों के नाम भी जानना चाहिए।

✻ द्वीप–समुद्रों का असंख्यातपना कैसे सिद्ध हुआ?

- ''द्वीप समुद्रा:'' इस बहुवचन के प्रयोग से

असंख्यात कितना?

- 2.5 उद्धार सागर या 25 कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य के समयों की जितनी संख्या है उतने ही द्वीप समुद्र हैं।
- इनमें प्रत्येक द्वीप के बाद एक समुद्र है तथा इन प्रारम्भिक और अन्तिम 16–16 द्वीप–समुद्रों के मध्य में भी असंख्यात द्वीप–समुद्र हैं। जिनके नाम हमें उपलब्धि नहीं है।
- ये द्वीप और समुद्र ग्राम और नगरों के समान नहीं बने हैं, बल्कि सबसे बीच में थाली के आकार का एक लाख योजन विस्तार वाला ''जम्बूद्वीप'' है।

- उसे चारों ओर से घेरे हुए उससे दूने विस्तार वाला ''लवण समुद्र'' है।
- उस ''लवण समुद्र'' को घेरे हुए उससे दूने विस्तार वाला ''धातकीखण्ड द्वीप'' है।
- उस ''धातकीखण्ड द्वीप'' को घेरे हुए उससे दूने विस्तार वाला ''कालोदधि समुद्र'' है।
- उस ''कालोदधि समुद्र'' को घेरे हुए उससे दूने विस्तार वाला ''पुष्करवर द्वीप'' है,
- उस ''पुष्करवर द्वीप'' को घेरे हुए उससे दूने विस्तार वाला ''पुष्करवर समुद्र'' है।

इसी प्रकार आगे–आगे जिस नाम का द्वीप है, उसी नाम का उससे दूने विस्तार वाला समुद्र है।

आठवें ''नंदीश्वर द्वीप'' में बावन अकृत्रिम चैत्यालय हैं, जिनकी वंदना करने अष्टाह्निका पर्व में देवगण जाते हैं।

इसके अतिरिक्त ग्यारहवें ''कुण्डलवर द्वीप'' में तथा तेरहवें रुचकवर द्वीप में भी 4–4 अकृत्रिम चैत्यालय हैं। इन सभी की पूजन हम सब तेरह द्वीप विधान अथवा इन्द्रध्वज विधान में करते हैं।

चौथें से सातवें, नौवें–दसवें एवं बारहवें द्वीप में अकृत्रिम चैत्यालय नहीं हैं।

पाँचवें क्षीरसागर का जल निर्जन्तुक एवं दूध के समान सफेद और निर्मल होता है। तीर्थंकरों का जन्माभिषेक उसी निर्जन्तुक पवित्र जल से किया जाता है।

समुद्रों के जल का स्वाद

समुद्र	स्वाद
लवण	नमक के समान
वारुणीवर	मदिरा के समान
क्षीरवर	दूध के समान
घृतवर	घृत/घी के समान
कालोदधि	सामान्य जल के समान
पुष्करवर	सामान्य जल के समान
स्वयम्भूरमण	सामान्य जल के समान
असंख्यात समद्रों का	इक्षुरस के समान

- लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र और स्वयम्भूरमण समुद्र में ही विकलेन्द्रिय एवं सैनी पंचेन्द्रिय जलचर जीव हैं, अन्य में नहीं।
- लवण समुद्र में नदी मुख के समीप रहने वाला मच्छ 9 योजन (72 मील) लम्बा, 4½ योजन चौड़ा और 2¼ योजन मोटा है।
- लवण समुद्र के मध्य में मच्छ 18 योजन लम्बा, 9 योजन चौड़ा 4½ योजन मोटा है।
- कालोदधि समुद्र में नदी प्रवेश स्थान में रहने वाले मच्छ की दीर्घता (अवगाहना) लवण समुद्र के मध्य रहने वाले मच्छ की तरह ही जानना एवं मध्य भाग में रहने वाले मच्छ की अवगाहना दोगुनी जानना।
- अंतिम स्वयम्भूरमण समुद्र के तट पर रहने वाले मच्छ के शरीर की लम्बाई 500 योजन, चौड़ाई 250 योजन और मोटाई 125 योजन है।
- समुद्र के मध्य में रहने वाले मच्छ का शरीर 1 हजार योजन लम्बा, 500 योजन चौड़ा, 250 योजन मोटा राघव नाम का महामच्छ है। (यह जलचर जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना है।)
- उसके कान में तन्दुल के आकार का मच्छ होता है, जो महामच्छ के कान का मैल खाकर जिन्दा रहता है।

जम्बूद्वीप की स्थिति व विस्तार

तन्मध्ये मेरु–नाभिर्वृत्तो योजन–शतसहस्र–विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ।।9।।

सूत्रार्थ– (तन्मध्ये) उन सब द्वीप–समुद्रों के मध्य (बीच) में (मेरुनाभिर्वृत्तो) मेरुपर्वत की नाभिवाला गोल (योजनशतसहस्र–विष्कम्भो) एक लाख योजन विष्कंभ वाला (जम्बूद्वीपः) जम्बूद्वीप है।

* जम्बूद्वीप में क्या–क्या ?

आकार	–	सूर्य मण्डल के समान गोल/थाली के समान
विस्तार	–	1 लाख योजन
मेरु	–	मेरुनाभिर्वृत्तो (सुदर्शन मेरु नाभि के समान मध्य में)
क्षेत्र	–	भरतादि 7
पर्वत	–	हिमवानादि 6
सरोवर	–	पद्मादि 6
नदियाँ	–	गंगा–सिंधु आदि 14

सुमेरु पर्वत

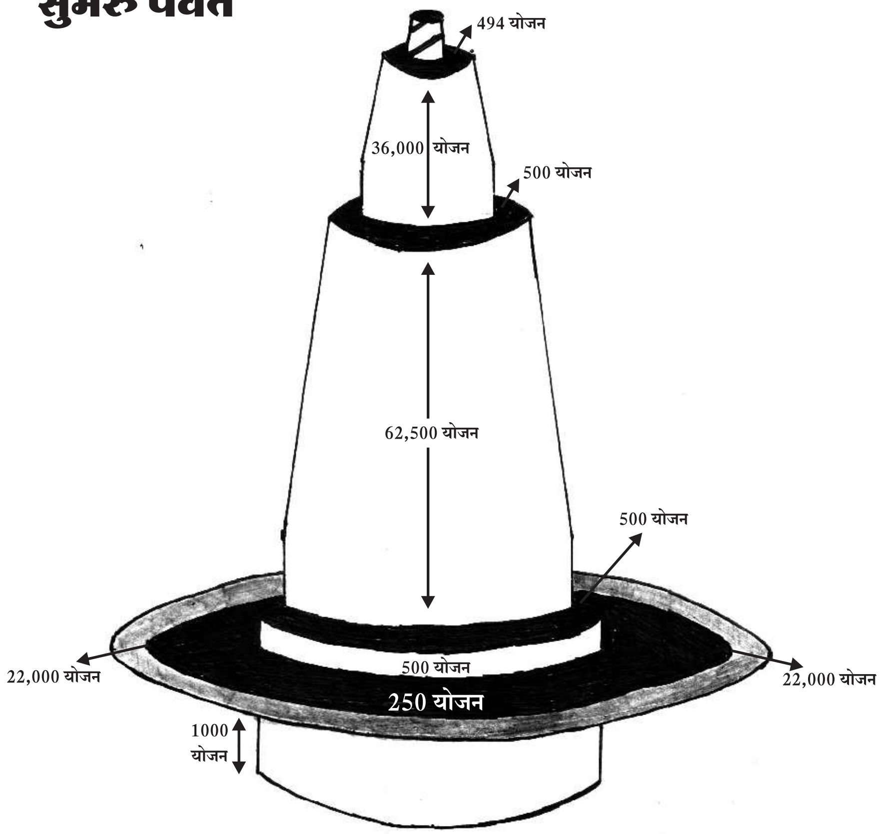
494 योजन
36,000 योजन
500 योजन
62,500 योजन
500 योजन
22,000 योजन
500 योजन
22,000 योजन
250 योजन
1000
योजन

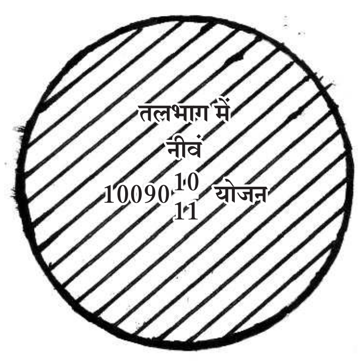
तलभाग में
नीवं
10090 10/11 योजन

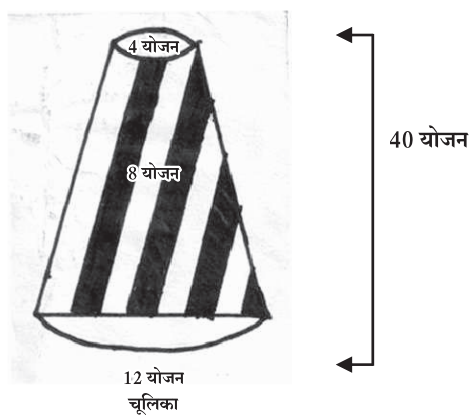
4 योजन
8 योजन
40 योजन
12 योजन
चूलिका

सुदर्शन (मेरु) पर्वत

- विदेह क्षेत्र के मध्य में सुदर्शन नाम का एक श्रेष्ठ महामेरु है।
- सुदर्शन मेरु की ऊँचाई नींव सहित चित्रा पृथ्वी के तलभाग से लेकर 1 लाख 40 योजन है।
- चित्रा पृथ्वी के नीचे 1000 योजन की नींव है।
- चित्रा पृथ्वी के ऊपर 99,000 योजन, और
- शिखर पर चूलिका 40 योजन है।
- 1000 + 99000 + 40 = 1,00,040 योजन
- सुमेरु पर्वत का विस्तार नींव के तलभाग में $10{,}090\frac{10}{11}$ योजन प्रमाण है।
- चित्रा पृथ्वी के ऊपर भद्रशाल वन के समीप 10,000 योजन है।
- नन्दन वन का बाह्य व्यास $9{,}954\ \frac{6}{11}$ योजन
- सौमनस वन का बाह्य व्यास $4{,}272\frac{8}{11}$ योजन है।

  पाण्डुक वन का बाह्य व्याय 1,000 योजन है।
- भद्रशाल वन की चौड़ाई पूर्व–पश्चिम 22,000–22,000 योजन है।
- भद्रशाल वन की पूर्व–पश्चिम चौड़ाई का 88वाँ भाग

  $\frac{22{,}000}{88}$ =250 योजन दक्षिण–उत्तर की चौड़ाई है।
- भद्रशाल वन से 500 योजन ऊपर जाकर सानु प्रदेश (कटनी) पर दूसरा नन्दन वन है। जिसका विस्तार 500 योजन है।
- नन्दन वन से 62,500 योजन ऊपर जाकर सौमनस नाम का तीसरा वन है। जिसका विस्तार 500 योजन है।

- सौमनस वन से 36000 योजन ऊपर जाकर सुमेरु के शीर्ष पर चौथा पाण्डुक वन है जिसका विस्तार 494 योजन है।
- पाण्डुक वन के मध्य भाग में 40 योजन ऊँची, मूल में 12 योजन चौड़ी, मध्य में 8 योजन चौड़ी, और शिखर पर 4 योजन चौड़ी चूलिका है।
- इसके ऊपर 1 बाल के अंतर सहित प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान है।
- सुदर्शन मेरु के प्रत्येक वन की चारों दिशाओं में 1-1 जिनालय हैं (1 x 4 = 4 x 4 = 16)।
- इन 16 जिनालयों में 108 x 16=1,728 जिन प्रतिमाएँ विराजमान है।

पाण्डुक वन

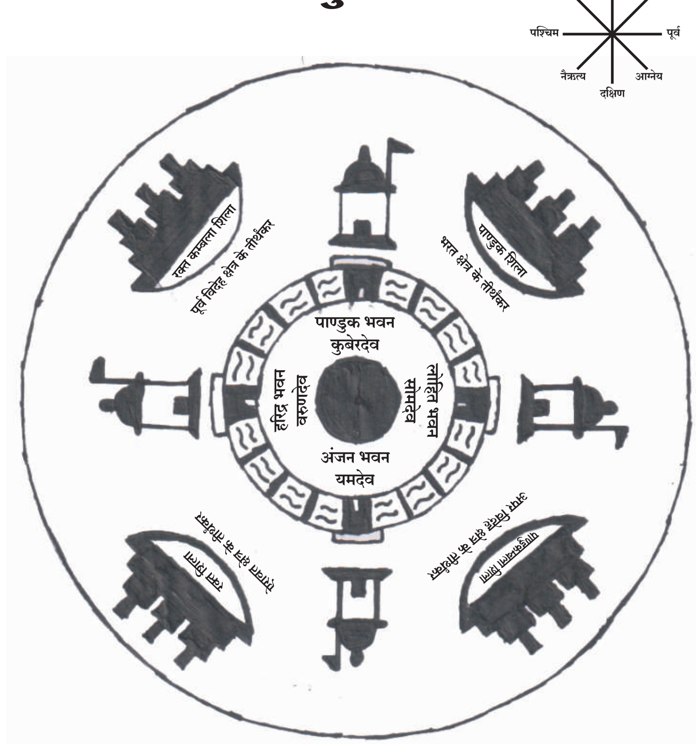

पाण्डुक वन

- पाण्डुक वन सुमेरु पर्वत का चौथा वन है।
- इसकी चारों दिशाओं में लोहित, अंजन, हरिद्र और पाण्डुक नामके चार भवन हैं।
- इन भवनों में सोम देव, यम देव, वरुण देव और कुबेर देव लोकपाल क्रीड़ा करते हैं।
- चारों विदिशाओं में 4–4 करके 16 पुष्करिणियाँ हैं।
- वन की ईशान, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य दिशा में अर्ध चन्द्राकार 4 शिलाएँ हैं।

पाण्डुक वन की 4 शिलाएँ

विदिशा	ईशान	आग्नेय	नैऋत्य	वायव्य
शिला	पाण्डुक	पाण्डुकम्बला	रक्त	रक्तकम्बला
वर्ण	स्वर्णमयी	रजतमयी	तपाये हुए स्वर्णमयी	रुधिरमयी, लोहित मणि के समान
तीर्थंकर	भरत क्षेत्र के	अपर (पश्चिम) विदेह के	ऐरावत क्षेत्र के	पूर्व विदेह के
नोट– इन पर बालक तीर्थंकरों का जन्माभिषेक होता है।				

शिला निर्देश

- पाण्डुक आदि शिलाएँ 100 योजन लम्बी, 50 योजन चौड़ी और मध्य में 8 योजन ऊँची हैं।
- दोनों ओर से क्रमश: हीन होने के कारण यह अर्ध चन्द्राकार है।

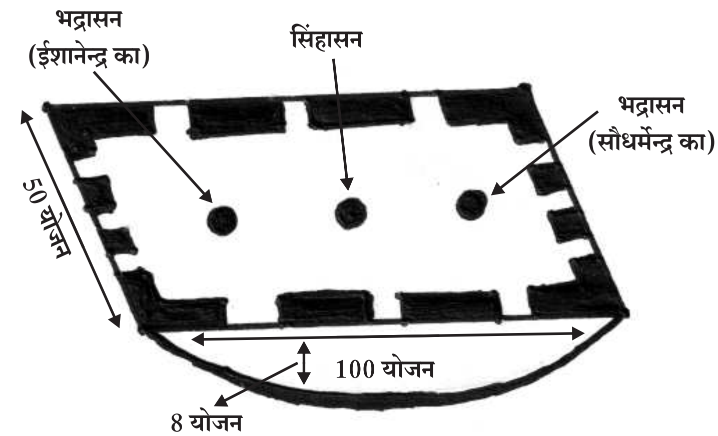

- शिला के मध्य में तीन पीठ युक्त 1 सिंहासन है।
- सिंहासन के आजू-बाजू तीन पीठ युक्त 1-1 भद्रासन है।

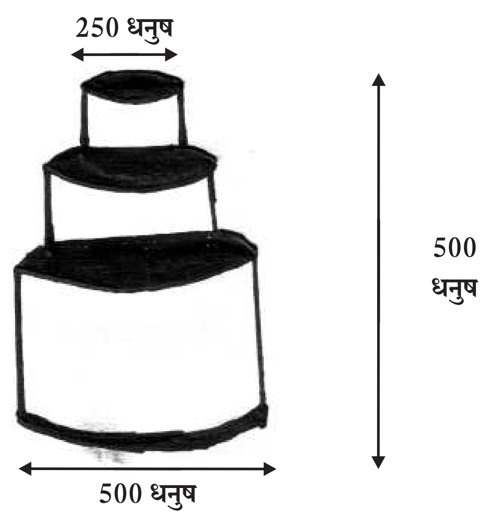

- सिंहासन की ऊँचाई 500 धनुष।
- सिंहासन का मूल विस्तार 500 धनुष।
- उपरिम विस्तार 250 धनुष है।
- इन आसनों का मुख पूर्व दिशा की ओर है।
- इनमें मध्य सिंहासन पर बाल तीर्थंकर को विराजमान करते हैं।
- दक्षिण की ओर वाला भद्रासन सौधर्मेन्द्र और उत्तर की ओर वाला भद्रासन ईशानेन्द्र सम्बंधी है ये तीनों आसन गोल है।

सुमेरु पर्वत का वर्ण

- सुमेरु पर्वत चित्रा पृथ्वी पर्यन्त मूल में 1000 योजन प्रमाण वज्रमय,
- मध्य में 61,000 योजन पर्यन्त अनेकों रत्नमय और
- अग्रभाग में 38,000 योजन स्वर्णमय है।
- ऊपर की चूलिका नीलमणि से बनी है।

सुमेरु पर्वत को मेरु क्यों कहते हैं ?

''मिनाति इति मेरुः'' जो मापता है, प्रमाणित करता है, वह मेरु है। मध्य लोक को नापने के लिए मापदण्ड होने के कारण इसे मेरु कहते हैं।

सुमेरु पर्वत के 16 नाम

1. मेरु, 2. सुमेरु, 3. सुदर्शन, 4. मंदर, 5. शैलराज, 6. प्रियदर्शन
7. रत्नसंजय, 8. दशांग, 9. लोकनाभि, 10. मनोरमा,
11. लोकमध्य, 12. दिशांत, 13. दिशानुत्तर, 14. सूर्याचरण
15. सूर्यावर्त और 16. स्वयम्प्रभ।

जम्बूवृक्ष

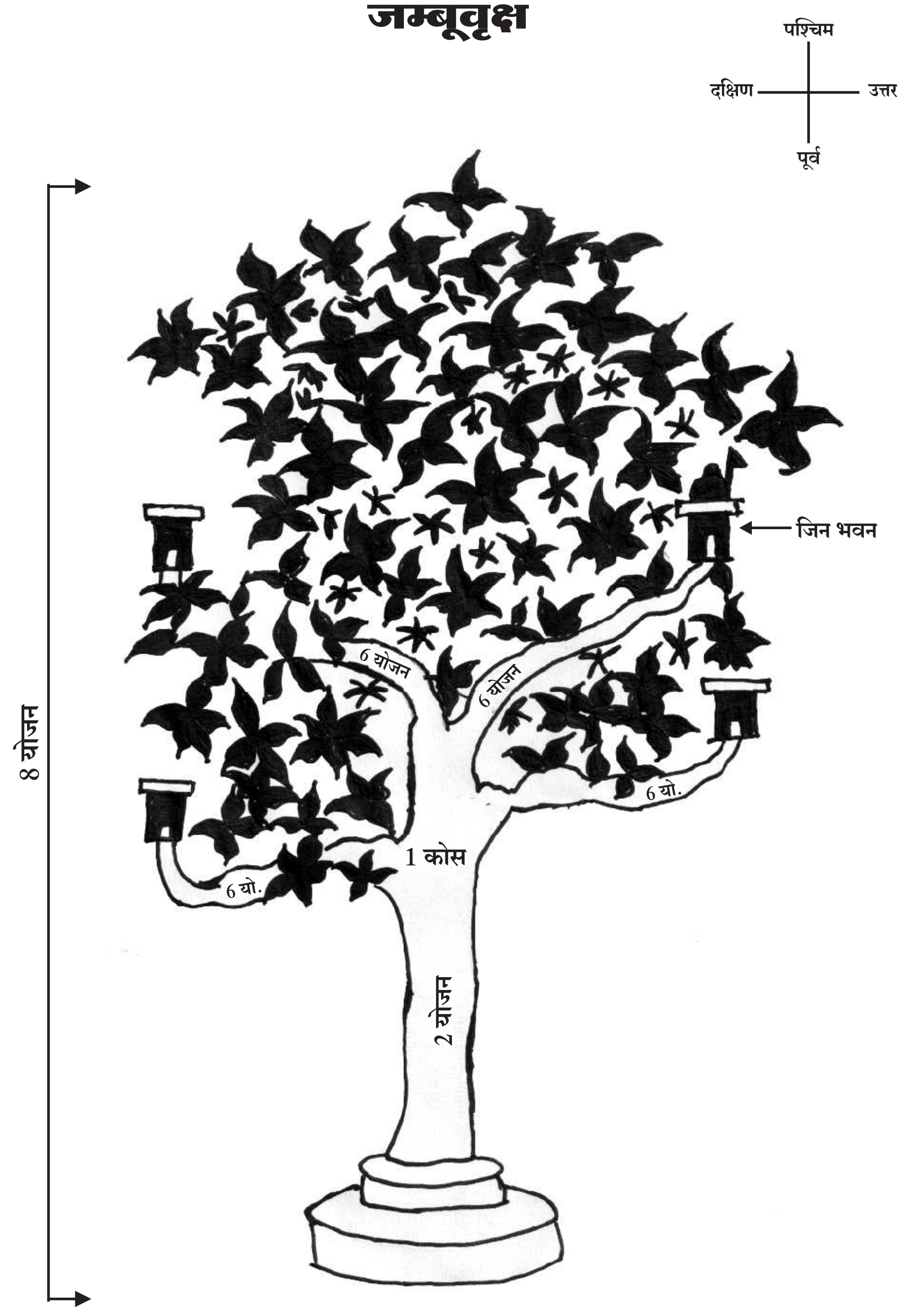

* जम्बूद्वीप का नाम जम्बूद्वीप क्यों पड़ा ?
● जम्बूवृक्ष के कारण
* जम्बूवृक्ष कहाँ है ?
● नील पर्वत के समीप, सीता नदी के पूर्व तट पर, सुदर्शन मेरु की ईशान दिशा में, उत्तर–कुरुक्षेत्र में उत्तम पीठ युक्त मूल में 500 योजन मध्य में 8 योजन और अंत में 2 कोस ऊँचा स्वर्णमय जम्बूवृक्ष स्थल है।
● यह वृक्ष कैसा है ?
● जम्बूवृक्ष पृथ्वीकायिक है, वनस्पतिकायिक नहीं।
● अकृत्रिम और अनादिनिधन है।
● जम्बूवृक्ष 8 योजन ऊँचा है।
● इसकी जड़ 2 कोस प्रमाण नीचे पृथ्वी में हैं।
● उसका स्कन्ध 2 योजन ऊँचा तथा 1 कोस मोटा पुखराजमय हैं।
● इस वृक्ष की चारों दिशाओं में 6–6 योजन लम्बी तथा 6–6 योजन के अंतराल से स्थित 4 महाशाखाएँ हैं।
● जम्बूवृक्ष की उत्तर शाखा पर जिनभवन है। शेष 3 शाखाओं पर आदर और अनादर नामक व्यंतर देवों के निवास स्वरूप भवन बने हैं।
● इन शाखाओं में मरकत–वैडूर्य–इन्द्रनील–कर्केतन–स्वर्ण और मूँगे से निर्मित विविध प्रकार के पत्ते हैं।
● पंचवर्ण रत्नों से निर्मित अनुपम रूप वाले अंकुर, फल एवं पुष्पों से शोभायमान हैं।
● जम्बू वृक्ष के 1,40,120 परिवार वृक्ष हैं। *

* परिशिष्ट–5–जम्बूवृक्ष के परिवार वृक्ष पे. नं. 153

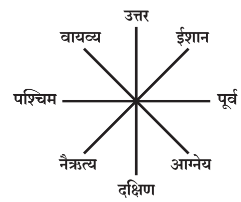

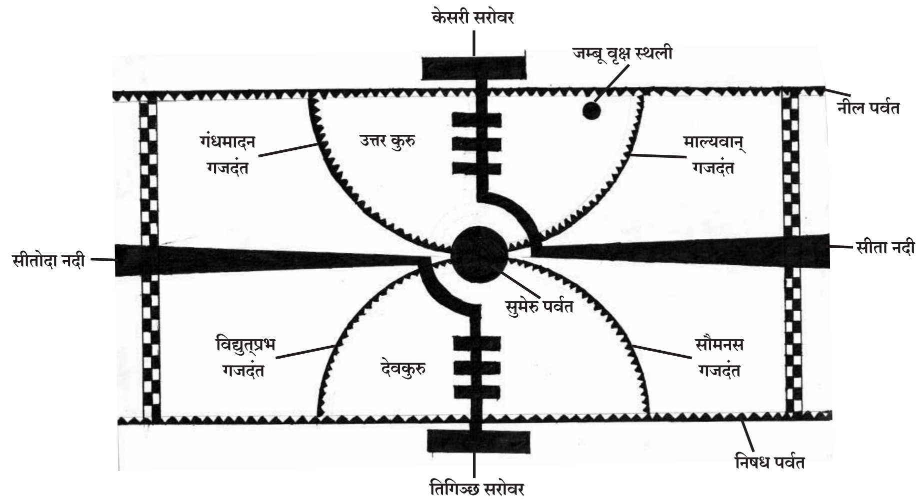

देवकुरु - उत्तर कुरु

- सुमेरु पर्वत के दक्षिण भाग में सौमनस और विद्युत्प्रभ गजदंत के बीच में देवकुरु क्षेत्र स्थित है।
- सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग में गंधमादन और माल्यवान् गजदंत के बीच में उत्तरकुरु क्षेत्र स्थित है।
- देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्रों में सदा अवसर्पिणी का प्रथम एवं उत्सर्पिणी का छठा काल अर्थात् सुषमा-सुषमा काल होने से उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था पाई जाती है।

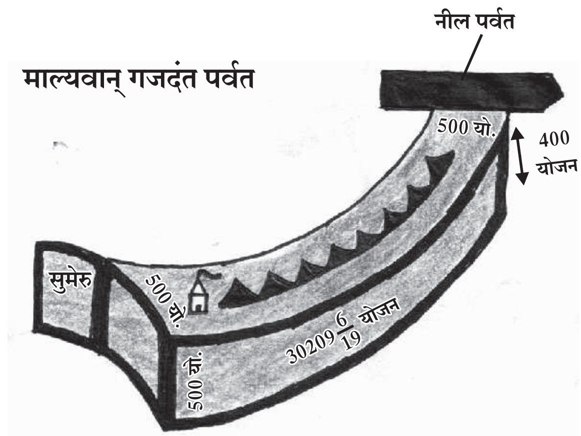

गजदंत पर्वत

- मेरु पर्वत की विदिशाओं में हाथी के दाँत के आकार वाले 4 गजदंत (वक्षार) पर्वत हैं।
- जो एक ओर निषध व नील कुलाचलों को और दूसरी तरफ मेरु को स्पर्श करते हैं।

विदिशा	ईशान	आग्नेय	नैऋत्य	वायव्य
गजदंत	माल्यवान्	सौमनस	विद्युत्प्रभ	गंधमादन
वर्ण	वैडूर्यमणिमय नीला	रजतमय	तपाये हुए स्वर्णमय	स्वर्णमय
कूट	9	7	9	7

- इन गजदंतों की लम्बाई $30,209\frac{6}{19}$ योजन प्रमाण है।
- इनका विस्तार सर्वत्र 500 योजन है।
- इन गजदंतों की ऊँचाई नील और निषध पर्वतों के समीप 400 योजन है।
- आगे वह क्रम से बढ़ता हुआ मेरु के समीप 500 योजन हो जाता है।

- इन पर्वतों का अवगाह (नींव) सर्वत्र अपनी ऊँचाई का चतुर्थांश ($\frac{1}{4}$) है।
- निषध-नील पर्वत के पास $\frac{400}{4} = 100$ यो.
- मेरु के समीप $\frac{500}{4} = 125$ योजन प्रमाण है।
- मेरु के समीपस्थ कूटों की ऊँचाई 125 योजन और कुलाचलों के समीपस्थ कूटों की ऊँचाई 100 योजन है।

सात क्षेत्रों के नाम

भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक्-हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि।।10।।

सूत्रार्थ- (भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्यवतैरावत -वर्षाः-क्षेत्राणि) भरतवर्ष, हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवतवर्ष और ऐरावतवर्ष। ये क्षेत्र छः पर्वतों से विभाजित होते हैं। इन्हें वर्ष भी कहते हैं।

जम्बूद्वीप के 7 क्षेत्र

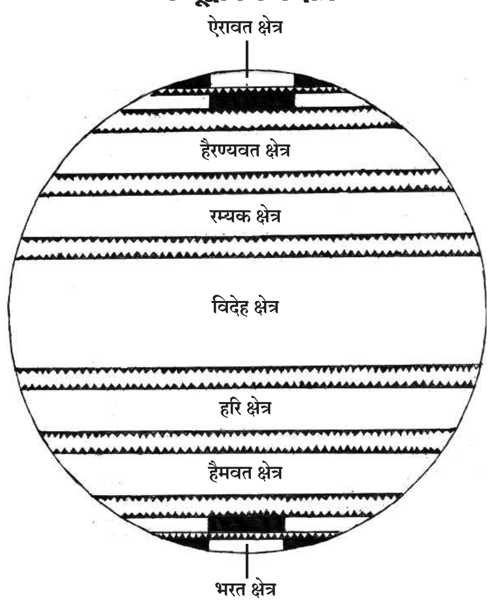

जम्बूद्वीप के 7 क्षेत्र

- भरत
  - ✻ 5 म्लेच्छ खण्ड
  - ✻ 1 आर्य खण्ड
  - (यहाँ हम रहते हैं)
- हैमवत
- हरि
- विदेह
  - 32 देश
    - प्रत्येक देश में
    - ✻ 5 म्लेच्छ खण्ड
    - ✻ 1 आर्य खण्ड
    - (विद्यमान तीर्थंकर यहाँ हैं)
  - देवकुरु-उत्तर कुरु
    - उत्तम भोगभूमि
- रम्यक
- हैरण्यवत
- ऐरावत
  - ✻ 5 म्लेच्छ खण्ड
  - ✻ 1 आर्य खण्ड

✻ **भरतक्षेत्र का नाम भरत क्यों पड़ा?**

- **भरत यह संज्ञा अनादिकालीन है।**
- **यह संसार अनादि होने से अहेतुक है इसलिए भरत यह नाम स्वाभाविक है।**

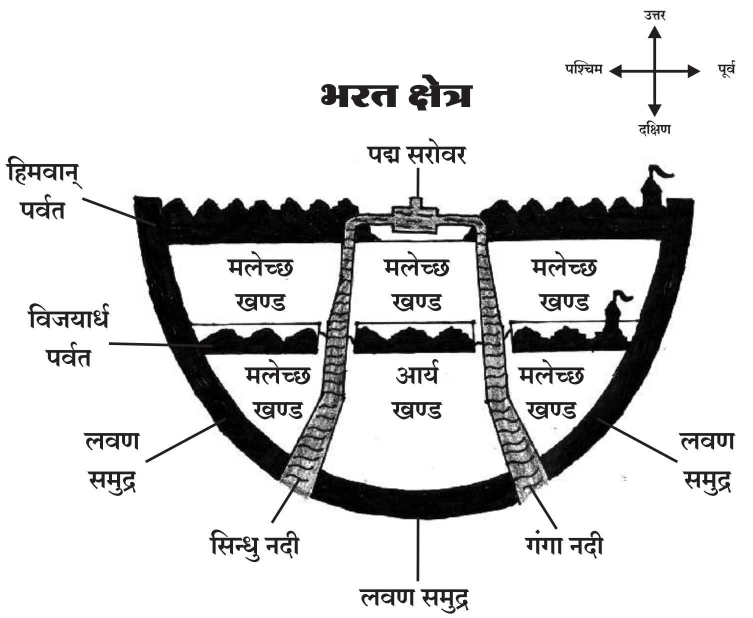

✻ कहाँ है ?

- हिमवान् पर्वत के दक्षिण एवं पूर्व व पश्चिम समुद्र के बीचों–बीच।

✻ कितने खण्ड है ?

- विजयार्ध पर्वत के माध्यम से भरत क्षेत्र के 2 भाग हो जाते हैं।
- गंगा–सिन्धु नदियों के द्वारा उसके और भाग होकर 6 भाग बन जाते हैं।
- विजयार्ध पर्वत की दक्षिण दिशा के 3 खण्डों में से मध्य का भाग आर्यखण्ड कहलाता है, जिसमें हम रहते हैं।
- आर्यखण्ड के बीच में 12 योजन लम्बी और 9 योजन चौड़ी अयोध्या नगरी है।
- शेष 5 म्लेच्छ खण्ड हैं।
- विजयार्ध के उत्तरवाले 3 खण्डों से मध्य वाले म्लेच्छ खण्ड के बीचोंबीच वृषभगिरि नाम का एक गोल पर्वत है। जिस पर दिग्विजय कर चुकने पर चक्रवर्ती अपना नाम अंकित करता है।

वृषभगिरि

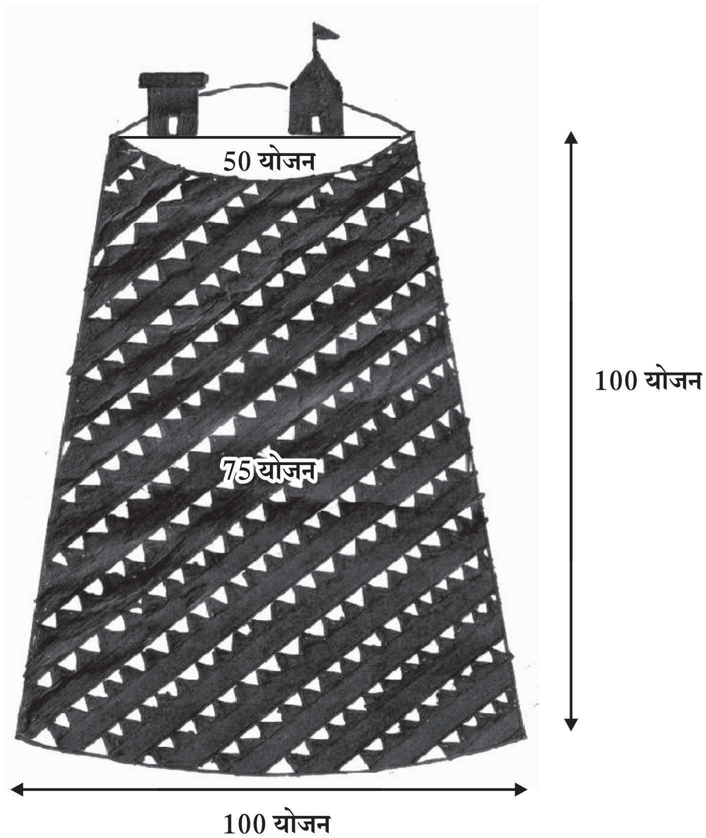

वृषभगिरि

- वृषभगिरि पर्वत 100 योजन ऊँचा है।
- इसका विस्तार मूल में 100 योजन है।
- मध्य में 75 योजन है।
- ऊपर 50 योजन है।
- पर्वत की नींव चतुर्थ भाग प्रमाण $\frac{100}{4}$ = 25 योजन है।
- नाना रत्नों एवं स्वर्ण से युक्त उत्तम भवन और जिनभवन स्थित हैं।

विजयार्ध पर्वत

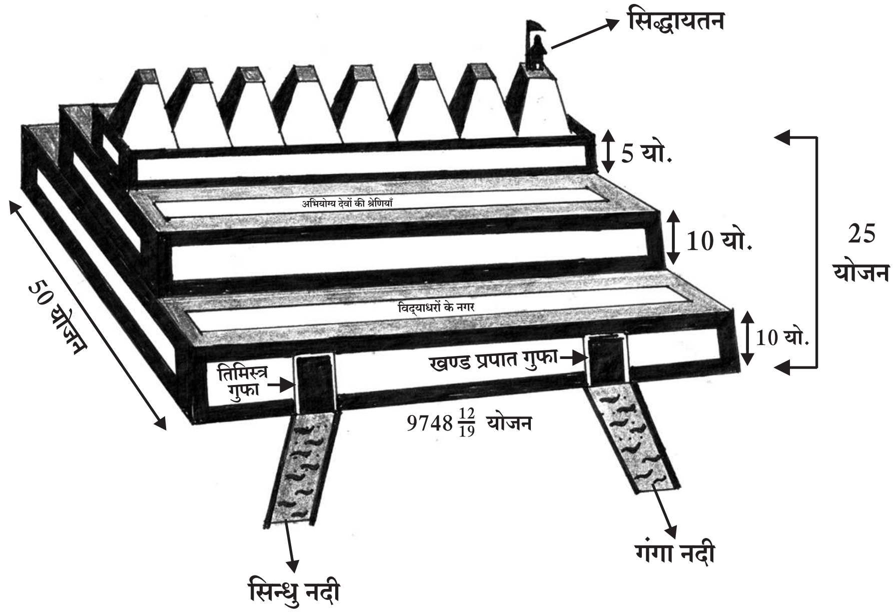

*** विजयार्ध पर्वत का नाम विजयार्ध क्यों पड़ा ?**

- **चक्रवर्ती के विजयक्षेत्र के आधे भाग को सूचित करने वाला, विजय + अर्ध = विजयार्ध ही इसका सार्थक नाम है।**
- **यह पर्वत चाँदी से निर्मित होने के कारण इसे ''रजताचल'' भी कहते हैं।**
- **भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र और प्रत्येक उपविदेह को 2 भागों में बाँटने वाला है।**
- **यह पूर्व–पश्चिम तक लवण समुद्र को स्पर्श करता हुआ लम्बायमान है।**
- **इसकी ऊँचाई 25 योजन, लम्बाई 97,48 $\frac{12}{19}$ योजन, चौड़ाई 50 योजन एवं नीव 6 $\frac{1}{4}$ योजन है।**

- भूमितल से 10 योजन ऊपर उत्तर व दक्षिण दिशा में विद्याधरों के नगरों की 2 श्रेणियाँ हैं।
- दक्षिण श्रेणी में 50 और उत्तर श्रेणी में 60 नगर है।*
- इससे 10 योजन ऊपर जाकर उसी प्रकार दक्षिण व उत्तर दिशा में आभियोग्य देवों की श्रेणियाँ हैं।
- उससे 5 योजन ऊपर की भूमि पर 9 कूट होते हैं जिसमें पूर्व दिशा में 1 अकृत्रिम सिद्धायतन है और शेष पर यथायोग्य नामधारी व्यन्तर व भवनवासी देव रहते हैं।
- इसके मूलभाग की पूर्व दिशा में खण्डप्रपात और पश्चिम दिशा में तिमिस्त्र गुफा है। जिनमें क्रम से गंगा व सिन्धु नदी प्रवेश करती है।
- इन गुफाओं की लम्बाई दक्षिण–उत्तर 50 योजन, पूर्व–पश्चिम 12 योजन है और 8 योजन ऊँचीं हैं।
- इन गुफाओं के भीतर बहुमध्यभाग में दोनों तटों से उन्मग्ना व निमग्ना नाम की 2 नदियाँ निकलती हैं। जो गंगा और सिन्धु नदियों में मिल जाती हैं।
- उनके 6 योजन चौड़े, 1 कोस मोटे, 8 योजन ऊँचे वज्रमय युगल कपाट है।

नोट–इसी प्रकार से ऐरावत क्षेत्र में भी जानना। लेकिन वहाँ नदियों के नाम बदल जाएँगे।

* परिशिष्ट–6, भरत क्षेत्रस्थ विजयार्ध पर्वत सम्बन्धी 110 नगरियाँ पेज नं. 154

हैमवत क्षेत्र

- हिमवान् कुलाचल से उत्तर की ओर, महाहिमवान् कुलाचल से दक्षिण की ओर, पूर्व-पश्चिम लवण समुद्र के मध्य हैमवत क्षेत्र है।
- नाभि के समान उसके बीच में 1 हजार योजन ऊँचा, 1 हजार योजन चौड़ा, गोलाकार, स्वर्णमयी शब्दवान नाभिगिरि है, इसकी 10 कोस नीचे जमीन में नींव है।
- नींव के ऊपर चारों ओर 4 दिशाओं में 4 द्वार सहित 1 योजन ऊँची, 2 कोस चौड़ी स्वर्णमयी वेदी है।
- इसके ऊपर बीच में 62½ योजन ऊँचा 21¼ योजन चौड़ा, स्वर्णमयी चौकोर स्वाति नामक कूट है। इसमें स्वाति नामक व्यंतर देव रहता है।
- हिमवान् पर्वत के समीप होने से यह क्षेत्र ''हैमवत क्षेत्र'' कहलाता है।

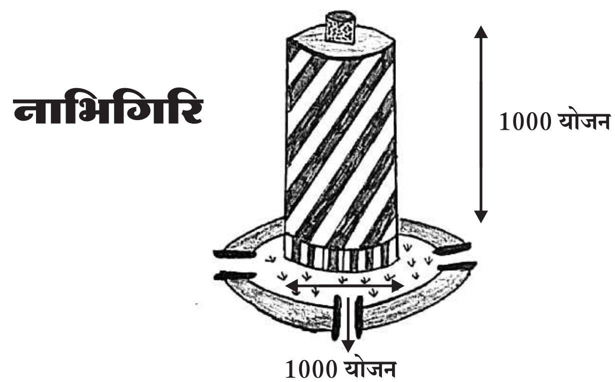

हरि क्षेत्र

- महाहिमवान् कुलाचल के उत्तर की ओर, निषध कुलाचल से दक्षिण की ओर, पूर्व-पश्चिम लवण समुद्र के मध्य हरिक्षेत्र है।
- नाभि के समान इसके बीच में गोलाकार, स्वर्णमयी ''विजयवान'' नामक नाभिगिरि है।
- इसके ऊपर बीच में चारण नमक व्यन्तर देव का निवास स्थान है।
- यहाँ हरित वर्ण वाले मनुष्य होने से इस क्षेत्र का नाम ''हरिक्षेत्र'' है।

विदेह क्षेत्र

- निषध कुलाचल से उत्तर की ओर, नील पर्वत से दक्षिण की ओर, पूर्व–पश्चिम समुद्र के मध्य में विदेह क्षेत्र है।
- नाभि के समान इसके बीच में सुदर्शन मेरु है। (जिसका वर्णन पूर्व में कर आये हैं।)
- सुमेरु की पूर्व दिशा में पूर्व विदेह एवं पश्चिम दिशा में पश्चिम (अपर) विदेह है।
- पूर्व विदेह के मध्य से सीता नदी और
- पश्चिम विदेह के मध्य से सीतोदा नदी बहती है।
- इन दोनों नदियों के उत्तर–दक्षिण तटों के द्वारा 4 भाग बन गये हैं।
- प्रत्येक भाग में 8–8 उपविभाग हैं।
- यह उपविभाग 1–1 स्वतंत्र देश है।
- अत: विदेह क्षेत्र में 8 × 4 = 32 देश हैं। वे सब विदेह कहलाते हैं।
- प्रत्येक भाग में 3 विभंगा नदी और 4 वक्षार पर्वतों के माध्यम से विदेह क्षेत्र में 8 नगरियाँ बन जाती हैं।
- प्रत्येक वक्षार पर्वत के नदी की ओर वाले भाग में 1–1 अकृत्रिम जिनमंदिर होता है।
- ऐसी 32 नगरियों से सम्बन्धित कुल 16 वक्षार के 16 जिनालय होते हैं।

- 1 दिशा की 8 नगरियों के मध्य में कम से कम 1 तीर्थंकर तो नियम से हमेशा विद्यमान रहते हैं।
- इस प्रकार 32 नगरियों में 4 तीर्थंकर कम से कम होंगे ही होंगे।
- 1 मेरु संबंधी विदेह में 4 तीर्थंकर,
- तो 5 मेरु सम्बन्धी नगरियों में कम से कम 4 × 5 = 20 तीर्थंकर होते हैं।
- अधिकतम 170 तीर्थंकर होते हैं।

भरत क्षेत्र		ऐरावत क्षेत्र		विदेह क्षेत्र
5	+	5	+	(32x5) = 170

विदेह क्षेत्र

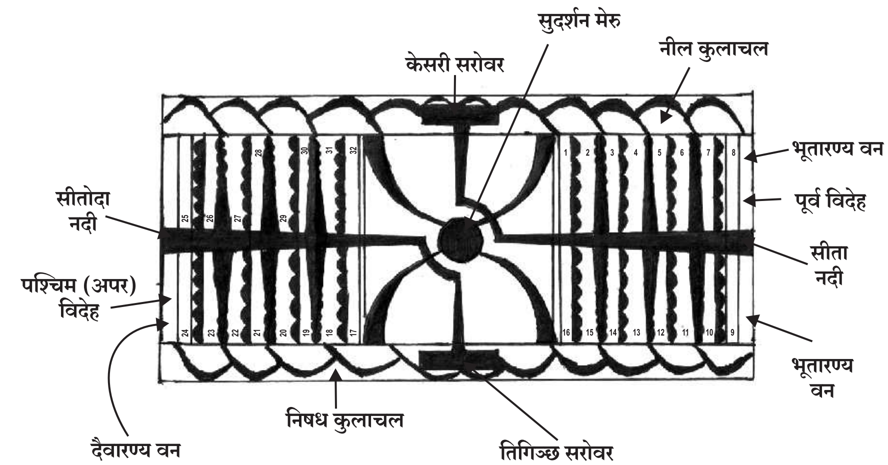

पूर्व भद्रशाल वन की वेदी से प्रारम्भ होने वाले उप विदेह

क्र.	उपविदेह	वक्षार पर्वत	विभंगा नदी	राजधानी
1.	कच्छा	–	–	क्षेमा
	–	चित्रकूट	–	–
2.	सुकच्छा	–	–	क्षेमपुरी
	–	–	गाहवती	–
3.	महाकच्छा	–	–	रिष्टा
	–	पद्मकूट	–	–
4.	कच्छकावती	–	–	अरिष्टापुरी
	–	–	द्रहवती	–
5.	आवर्ता	–	–	खड्गा
	–	नलिनकूट	–	–
6.	लांगलावर्ता	–	–	मंजुषा
	–	–	पंकवती	–
7.	पुष्कला	–	–	औषधनगरी
	–	एकशैल	–	–
8.	पुष्कलावती	–	–	पुण्डरीकिणी
भूतारण्य वन से प्रारम्भ होने वाले उप–विदेह				
9.	वत्सा	–	–	सुसीमा
	–	त्रिकूट	–	–
10.	सुवत्सा	–	–	कुण्डला
	–	–	तप्तजला	–
11.	महावत्सा	–	–	अपराजिता
	–	वैश्रवण	–	–
12.	वत्सकावती	–	–	प्रभंकरा
	–	–	मत्तजला	–

13.	रम्या	–	–	अंका
	–	अंजन शैल	–	–
14.	सुरम्यका	–	–	पद्मावती
	–	–	उन्मत्तजला	–
15.	रमणीया	–	–	शुभा
	–	आत्माञ्जन	–	–
16.	मंगलावती	–	–	रत्नसंचया
पश्चिम भद्रशाल वन की वेदी से प्रारम्भ होने वाले उप विदेह				
17.	पद्मा	–	–	अश्वपुरी
	–	श्रद्धावान्	–	–
18.	सुपद्मा	–	–	सिंहपुरी
	–	–	क्षीरोदा	–
19.	महापद्मा	–	–	महापुरी
	–	विजटावान्	–	–
20.	पद्मकावती	–	–	विजयपुरी
	–	–	सीतोदा	–
21.	शंखा	–	–	अरजा
	–	आशीविष	–	–
22.	नलिना	–	–	विरजा
	–	–	स्रोतवाहिनी	–
23.	कुमुदा	–	–	अशोका
	–	सुखावह	–	–
24.	सरित	–	–	वीतशोका

दैवारण्य वन से प्रारम्भ होने वाले उप–विदेह				
25.	वप्रा	–	–	विजया
	–	चन्द्रमाल	–	–
26.	सुवप्रा	–	–	वैजयंता
	–	–	गम्भीर मालिनी	–
27.	महावप्रा	–	–	जयंता
	–	सूर्यमाल	–	–
28.	वप्रकावती	–	–	अपराजिता
	–	–	फेनमालिनी	–
29.	गंधा	–	–	चक्रपुरी
	–	नागमाल	–	–
30.	सुगंधा	–	–	खड्गपुरी
	–	–	उर्मिमालिनी	–
31.	गंधिला	–	–	अयोध्या
	–	देवमाल	–	–
32.	गंधमालिनी	–	–	अवध्या

(तिलोयपण्णत्ती गाथा 2232–42, 2326–29 चौथा महाधिकार)

वक्षार पर्वत

- वक्षार पर्वत 16,592 $\frac{2}{19}$ योजन लम्बे एवं 500 योजन सर्वत्र विस्तार वाले हैं।
- ये पर्वत निषध और नील पर्वत के निकट 400 योजन ऊँचे एवं सीता और सीतोदा नदी के पास 500 योजन ऊँचे है।
- इनकी अपनी ऊँचाई से चौथे भाग प्रमाण नीचे जमीन में नींव है।
- सभी पर्वत स्वर्णमयी है।
- सब वक्षार पर्वत घोड़े के स्कंध सदृश हैं।

- पर्वतों के ऊपर 4–4 कूट पाये जाते हैं।
- नदी की ओर पाये जाने वाले प्रथम कूट पर जिन भवन स्थित है तथा तीन कूटों पर व्यन्तर देवों के क्रीड़ा गृह है।
- जहाँ से मनुष्य देह रहित ''सिद्ध अवस्था'' को प्राप्त करते हैं, उसे ''विदेह क्षेत्र'' कहते हैं।
- यहाँ सदा चतुर्थकाल के प्रारम्भ अवस्था जैसी स्थिति रहती है।

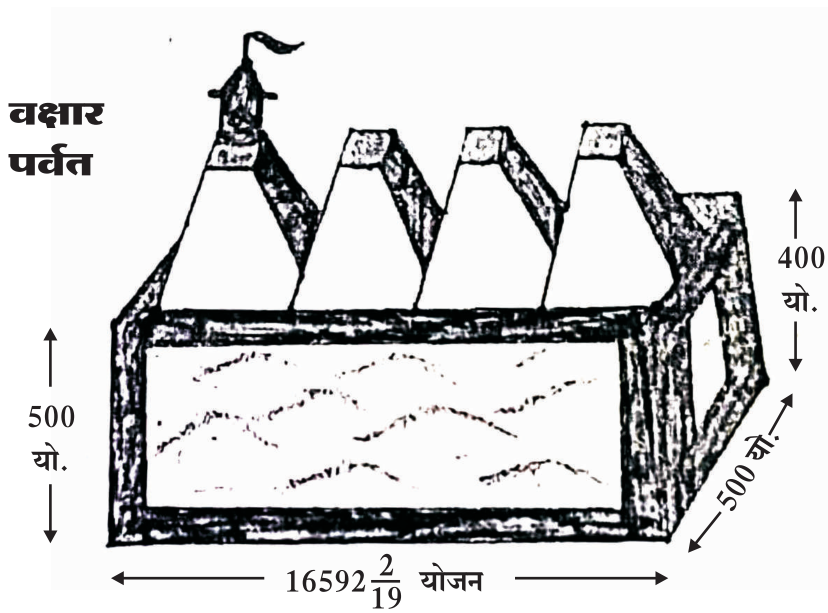

दैवारण्य–भूतारण्य वन निर्देश

- पूर्व विदेह के अन्त में जम्बूद्वीप की जगती के पास सीता नदी के दोनों किनारों पर रमणीय दैवारण्य वन हैं तथा अपर विदेह के अन्त में जम्बूद्वीप की जगती के पास सीतोदा नदी के दोनों किनारों पर भूतारण्य वन स्थित है।
- दैवारण्य व भूतारण्य वनों का विस्तार पृथक्–पृथक् 2,922 योजन है।

रम्यक क्षेत्र

- नील कुलाचल से उत्तर की ओर, रुक्मि कुलाचल से दक्षिण की ओर, पूर्व–पश्चिम लवण समुद्र के मध्य रम्यक क्षेत्र है।
- नाभि के समान इसके बीच में गोलाकार, स्वर्णमयी पद्मवान नाभिगिरि हैं।
- इसके ऊपर पद्म नामक व्यन्तर देव का निवास स्थान है।
- रमणीय देश, नदी, वन, उपवन आदि से युक्त होने के कारण इस क्षेत्र का नाम ''रम्यक क्षेत्र'' है।

हैरण्यवत क्षेत्र

- रुक्मि कुलाचल से उत्तर की ओर, शिखरी कुलाचल से दक्षिण की ओर, पूर्व–पश्चिम लवण समुद्र के मध्य हैरण्यवत क्षेत्र है।
- नाभि के समान इसके बीच में गोलाकार, स्वर्णमयी गंधवान पर्वत है।
- इसके ऊपर गंध नामक व्यन्तर देव का निवास स्थान है।
- स्वर्ण के वर्णवाले पर्वत के समीप होने से इस क्षेत्र का नाम ''हैरण्यवत क्षेत्र'' है।

ऐरावत क्षेत्र

- शिखरी पर्वत के उत्तर एवं पूर्व–पश्चिम समुद्र के बीचों–बीच।
- विजयार्ध पर्वत के माध्यम से ऐरावत क्षेत्र के 2 भाग हो जाते हैं।
- रक्ता–रक्तोदा नदियों के द्वारा उसके और भाग होकर 6 भाग बन जाते हैं। (शेष वर्णन भरत क्षेत्र के समान ही जानना चाहिए।)
- क्षत्रिय राजा ''ऐरावत'' के नाम के योग से इस क्षेत्र का नाम ''ऐरावत क्षेत्र'' पड़ा।

क्षेत्रों के विभाजक षट् कुलाचल पर्वतों के नाम

तद्विभाजिनः पूर्वा–परायता हिमवन्महा–हिमवन्निषध–नील–रुक्मि–शिखरिणो वर्षधरपर्वताः।।11।।

सूत्रार्थ–(तद्विभाजिनः) भरत आदि सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले (पूर्वापरायता) पूर्व से पश्चिम तक लम्बे (हिमवन्महाहिम–वन्निषध–नील–रुक्मि–शिखरिणो) हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी नाम वाले ये अनादिनिधन (वर्षधरपर्वताः) छह पर्वत हैं।

पर्वतों के रंग

हेमार्जुन–तपनीय–वैडूर्य–रजत–हेममयाः।।12।।

सूत्रार्थ–ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चाँदी, तपाया हुआ सोना, वैडूर्यमणि, चाँदी और सोने के समान रंग वाले हैं।

पर्वतों की अन्य विशेषताएँ

मणिविचित्र–पार्श्वा उपरिमूले च तुल्य–विस्ताराः।।13।।

सूत्रार्थ–इन पर्वतों के पार्श्वभाग अर्थात् तट मणियों से चित्र–विचित्र हैं तथा ये ऊपर–मध्य व मूल में समान विस्तार वाले हैं।

जम्बूद्वीप के 6 पर्वत

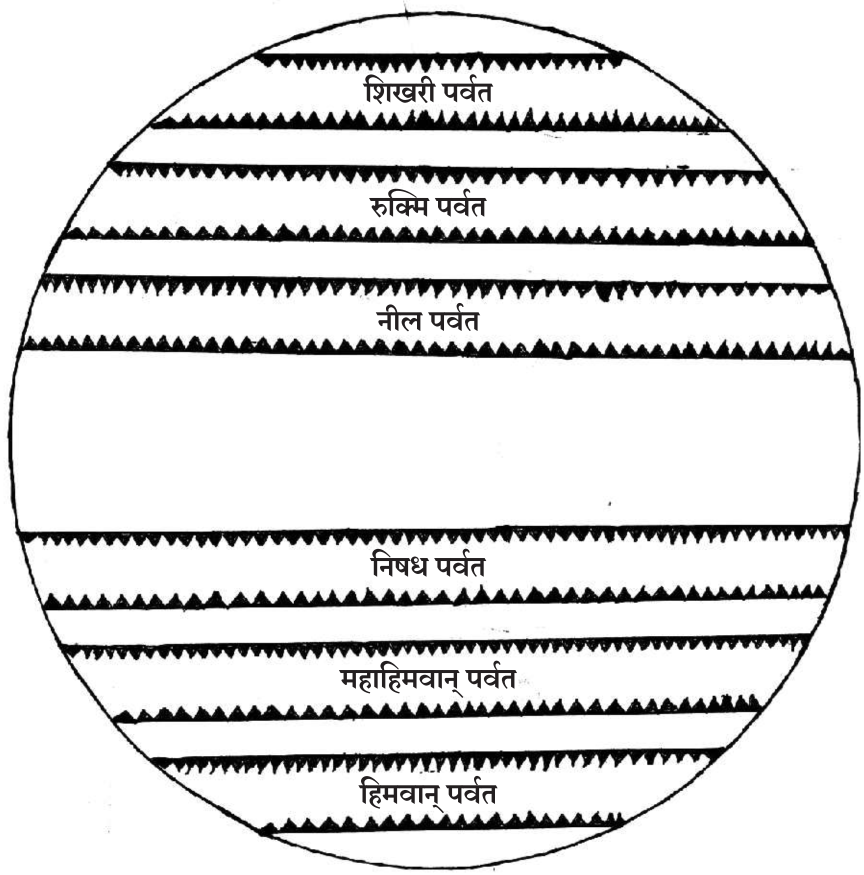

पर्वत

क्र.	पर्वत	ऊँचाई (योजन में)	नींव (योजन में)	चौड़ाई (दक्षिण–उत्तर) (योजन में)	लम्बाई (पूर्व–पश्चिम) (योजन में)	वर्ण
1.	हिमवान्	100	25	$1,052\frac{12}{19}$	$24,932\frac{1}{19}$	स्वर्णमय/चीनी रेशम
2.	महाहिमवान्	200	50	$4,210\frac{10}{19}$	$53,931\frac{6}{19}$	रजतमय (चाँदी के समान)
3.	निषध	400	100	$16,842\frac{2}{19}$	$94,156\frac{2}{19}$	तपाये हुये सोने के समान
4.	नील	400	100	$16,842\frac{2}{19}$	$94,156\frac{2}{19}$	वैडूर्य (मयूर कण्ठ) मय
5.	रुक्मि	200	50	$4,210\frac{10}{19}$	$53,931\frac{6}{19}$	रजतमय (चाँदी के समान)
6.	शिखरी	100	25	$1,052\frac{12}{19}$	$24,932\frac{1}{19}$	स्वर्णमय

विशेष

- लम्बाई पूर्व से पश्चिम समुद्र तक
- ऊपर नीचे व मूल में एक जैसा
- आजू–बाजू में विचित्र मणियों से जड़ा हुआ।
- यहाँ मयट् प्रत्यय होने से स्वर्णमय–रजतमय आदि अर्थ करना चाहिए।

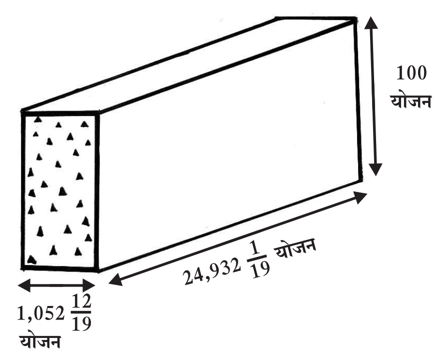

*नींव–अवगाह

पर्वतों पर स्थित सरोवरों के नाम

पद्म–महापद्म–तिगिंछ–केशरि–महापुण्डरीक–पुण्डरीका
ह्रदास्तेषामुपरि।।14।।

सूत्रार्थ–पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केशरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये छह तालाब हैं।

प्रथम तालाब की लम्बाई–चौड़ाई

प्रथमो योजन–सहस्रायामस्तदर्द्ध–विष्कम्भो ह्रदः ।।15।।

सूत्रार्थ–(प्रथमो) पहला (ह्रदः) तालाब (योजन सहस्रायामः) एक हजार योजन लम्बा और (तदर्द्ध विष्कंभो) उससे आधा चौड़ा है।

प्रथम सरोवर की गहराई

दश–योजनावगाहः ।।16।।

सूत्रार्थ–प्रथम पद्म तालाब (दशयोजन) दस योजन (अवगाहः) गहरा है।

जम्बद्वीप के 6 सरोवर

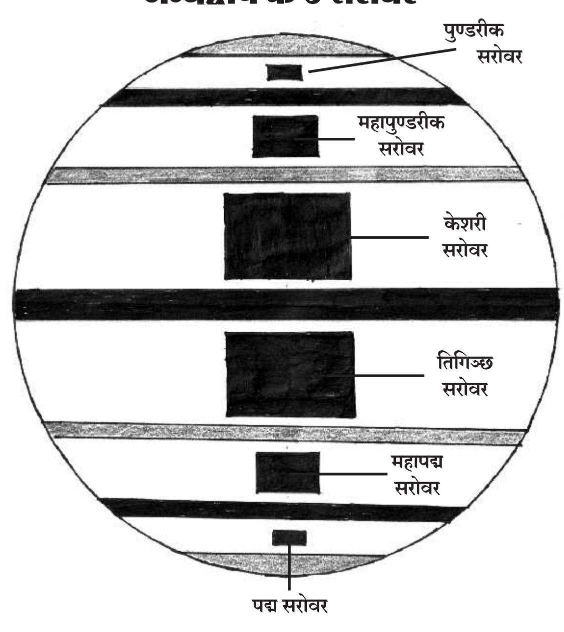

तालाब

क्र.	तालाब	लम्बाई	चौड़ाई	गहराई
1.	पद्म	1,000 योजन (40 लाख मील)	500 योजन (20 लाख मील)	10 योजन (4 हजार मील)
2.	महापद्म	2,000 योजन (80 लाख मील)	1,000 योजन (40 लाख मील)	20 योजन (8 हजार मील)
3.	तिगिञ्छ	4,000 योजन (1 लाख 60 ह. मील)	2,000 योजन (80 लाख मील)	40 योजन (16 हजार मील)
4.	केशरी	4,000 योजन (1 लाख 60 ह. मील)	2000 योजन (80 लाख मील)	40 योजन (16 हजार मील)
5.	महापुण्डरीक	2,000 योजन (80 लाख मील)	1,000 योजन (40 लाख मील)	20 योजन (8 हजार मील)
6.	पुण्डरीक	1,000 योजन (40 लाख मील)	500 योजन (20 लाख मील)	10 योजन (4 हजार मील)

पद्म सरोवर के 13 कूट

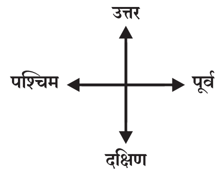

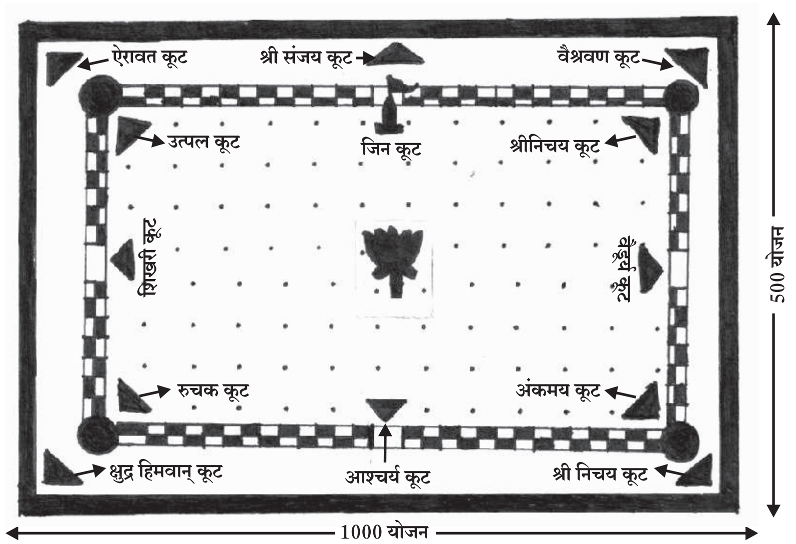

पद्म सरोवर

- हिमवान् पर्वत के शीर्ष पर बीचोंबीच पद्म नाम का सरोवर है।
- इसके तट पर चारों कोनों में तथा उत्तर दिशा में 5 कूट हैं।
- जल में आठों दिशाओं में 8 कूट हैं।
- सरोवर का तलभाग वज्र के समान और तटभाग नाना प्रकार की मणियों और सोने के समान है।
- यह सदैव अति निर्मल, महा–उज्ज्वल, स्फटिक मणि के समान स्वच्छ, गम्भीर, अक्षय जल से परिपूर्ण है।
- सरोवर के मध्य में 1 बड़ा कमल है, जिसमें 11000 पत्ते हैं।
- इस कमल पर श्रीदेवी का निवास स्थान है।
- इस प्रधान कमल की दिशा–विदिशाओं में 1,40, 115 परिवार कमल हैं।
- आगे के सरोवरों के कूट आदि पद्म सरोवर के समान ही जानना।

पद्म तालाब के मध्य में क्या है?

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ।।17।।

सूत्रार्थ– (तन्मध्ये) पद्म तालाब के बीच में (योजनं) एक योजन का (पुष्करम्) कमल है।

आगे के तालाब और कमलों का विस्तार आदि

तद् द्विगुण–द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च।।18।।

सूत्रार्थ– आगे के (ह्रदाः) तालाब (च) और (पुष्कराणि) कमल (तद्द्विगुण–द्विगुणा) पद्म तालाब से दूने–दूने विस्तार वाले हैं।

कमलों पर रहने वाली देवियों के नाम, आयु और परिवार

तन्निवासिन्यो देव्यः श्री–ह्री–धृति–कीर्ति–बुद्धि–लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक–परिषत्काः।।19।।

सूत्रार्थ– (तन्निवासिन्यो) उन पद्मादि सरोवरों के कमलों पर (श्री–ह्री–धृति–कीर्ति–बुद्धि–लक्ष्म्यः देव्यः) श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी ये छह देवियाँ (ससामानिक परिषत्काः) सामानिक और पारिषद जाति के देवों के साथ निवास करती हैं। इनकी आयु (पल्योपमस्थितयः) एक पल्य की है।

तालाब

सरोवर	कमल		नाल		कर्णिका		मृणाल का बाहुल्य	मुख्य कमल पर देवी
	उत्सेध	व्यास	जलमग्न	जल के ऊपर	उत्सेध	व्यास		
पद्म	1 योजन	1 योजन	10 योजन	½ योजन	1 कोस	1 कोस	3 कोस	श्री
महापद्म	2 योजन	2 योजन	20 योजन	1 योजन	2 कोस	2 कोस	6 कोस	ह्री
तिगिञ्छ	4 योजन	4 योजन	40 योजन	2 योजन	4 कोस	4 कोस	12 कोस	धृति
केसरी	4 योजन	4 योजन	40 योजन	2 योजन	4 कोस	4 कोस	12 कोस	कीर्ति
महापुण्डरीक	2 योजन	2 योजन	20 योजन	1 योजन	2 कोस	2 कोस	6 कोस	बुद्धि
पुण्डरीक	1 योजन	1 योजन	10 योजन	½ योजन	1 कोस	1 कोस	3 कोस	लक्ष्मी

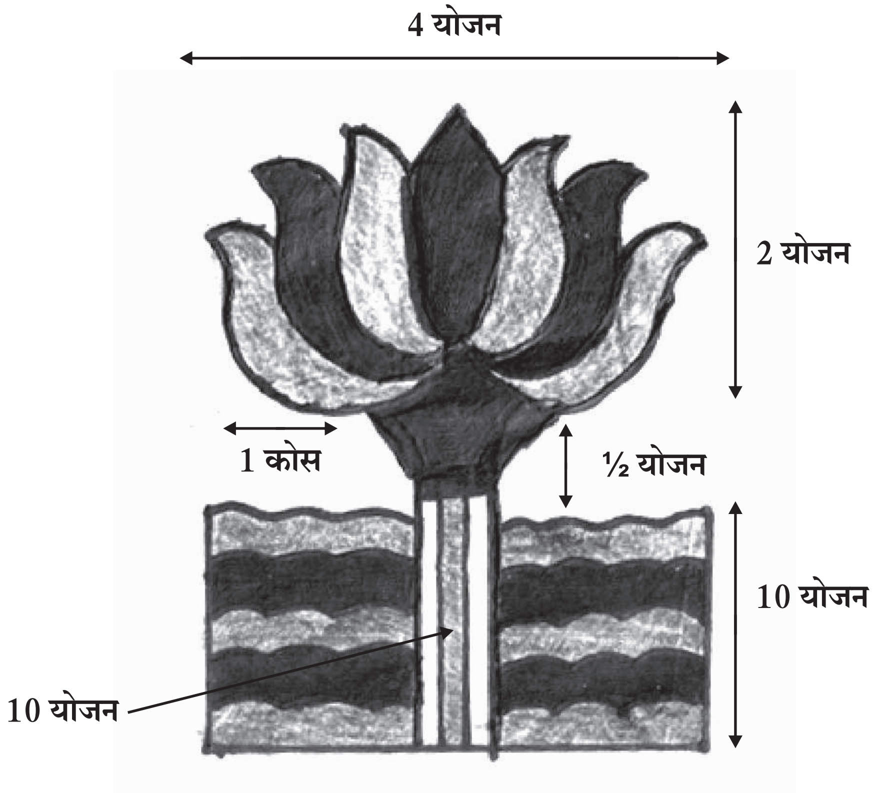

* पद्म सरोवर का मुख्य कमल

1. मुख्य कमल की कर्णिका दो कोस की एवं पंखुड़ियाँ एक–एक कोस की हैं।
2. इस प्रकार एक पंखुड़ी से दूसरी पंखुड़ी तक चार कोस अर्थात् एक योजन हो जाती है।
3. यह कमल पृथ्वीकायिक है।

पद्म सरोवर

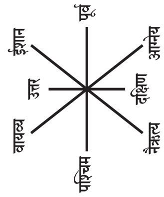
पूर्व
आग्नेय
दक्षिण
नैऋत्य
पश्चिम
वायव्य
उत्तर
ईशान

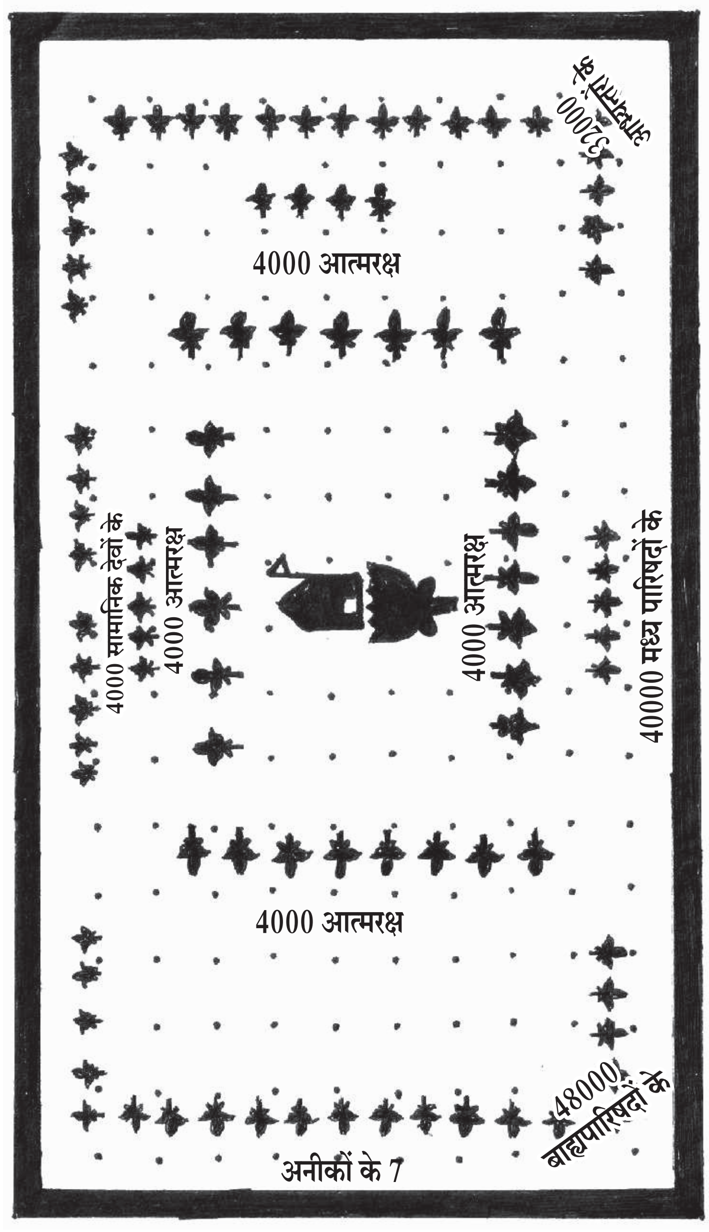
32000 आभ्यंतरों के
4000 आत्मरक्ष
4000 सामानिक देवों के
4000 आत्मरक्ष
4000 आत्मरक्ष
40000 मध्य पारिषदों के
4000 आत्मरक्ष
48000 बाह्यपारिषदों के
अनीकों के 7

सरोवर सम्बन्धी कमल

क्र.	सरोवर	मुख्य कमल	ईशान वायव्य उत्तर में सामानिक देवों के	आग्नेय में आभ्यन्तर पारिषद देवों के	दक्षिण में मध्य पारिषद देवों के	नैऋत्य में बाह्य परिषद देवों के	चारों दिशाओं में आत्मरक्ष देवों के	पश्चिम में अनीक देवों के	आठों दिशाओं में प्रतिहार देवों के	कुल कमल
1.	पद्म	1	4,000	32,000	40,000	48,000	16,000	7	108	1,40,116
2.	महापद्म	1	8,000	64,000	80,000	96,000	32,000	14	216	2,80,231
3.	तिगिञ्छ	1	16,000	1,28,000	1,60,000	1,92,000	64,000	28	432	5,60,461
4.	केसरी	1	16,000	1,28,000	1,60,000	1,92,000	64,000	28	432	5,60,461
5.	महापुण्डरीक	1	8,000	64,000	80,000	96,000	32,000	14	216	2,80,231
6.	पुण्डरीक	1	4,000	32,000	40,000	48,000	16,000	7	108	1,40,116

* आठों दिशाओं में 108 कमल किस प्रकार से रहेंगे ?
* चारों दिशाओं में 14x4=56
* विदिशाओं में 13x4=52

108

- पद्मादि सरावरों के मध्यवर्ती 6 कमलों की कर्णिका के मध्य भाग में अति निर्मल चन्द्रमा के समान शुभ,
- 1 कोस लम्बा, $\frac{1}{2}$ कोस चौड़ा, $\frac{3}{4}$ कोस ऊँचा रत्नमयी महल है। इन्हीं में श्री आदि 6 देवियाँ निवास करती हैं।
- ये सभी 1–1 पल्य की आयु वाली हैं।
- इनके परिवार कमलों पर बने महलों में इन सम्बन्धी सामानिक और पारिषद जाति के देव रहते हैं।

नदियों के नाम

गंगा–सिन्धु–रोहिद्रोहितास्या–हरिद्धरिकान्ता–सीता–सीतोदा–नारी–नरकान्ता–सुवर्ण–रूप्यकूला–रक्ता–रक्तोदा: सरितस्तन्मध्यगा: ।।20।।

सूत्रार्थ–गंगा, सिन्धु, रोहित–रोहितास्या, हरित, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये 14 नदियाँ भरतादि 7 क्षेत्रों में बहती हैं।

नदियों के बहने का क्रम

द्वयोर्द्वयो: पूर्वा: पूर्वगा:।।21।।

सूत्रार्थ–(द्वयोर्द्वयो:) दो–दो नदियों में से (पूर्वा:) पहली नदी (पूर्वगा:) पूर्व समुद्र को जाती है।

शेषास्त्व–परगा: ।।22।।

सूत्रार्थ– (शेषा: तु) शेष नदियाँ (अपरगा:) पश्चिम की ओर बहती हैं।

महानदियों की सहायक नदियाँ

चतुर्दश–नदी–सहस्र–परिवृता गंगा–सिंध्वादयो नद्यः।।23।।

सूत्रार्थ– (गंगा सिन्ध्वादयो नद्यः) गंगा–सिन्धु आदि नदियाँ (चतुर्दश नदी सहस्रपरिवृता) चौदह हजार सहायक नदियों से घिरी हुई हैं।

जम्बूद्वीप की 14 नदियाँ

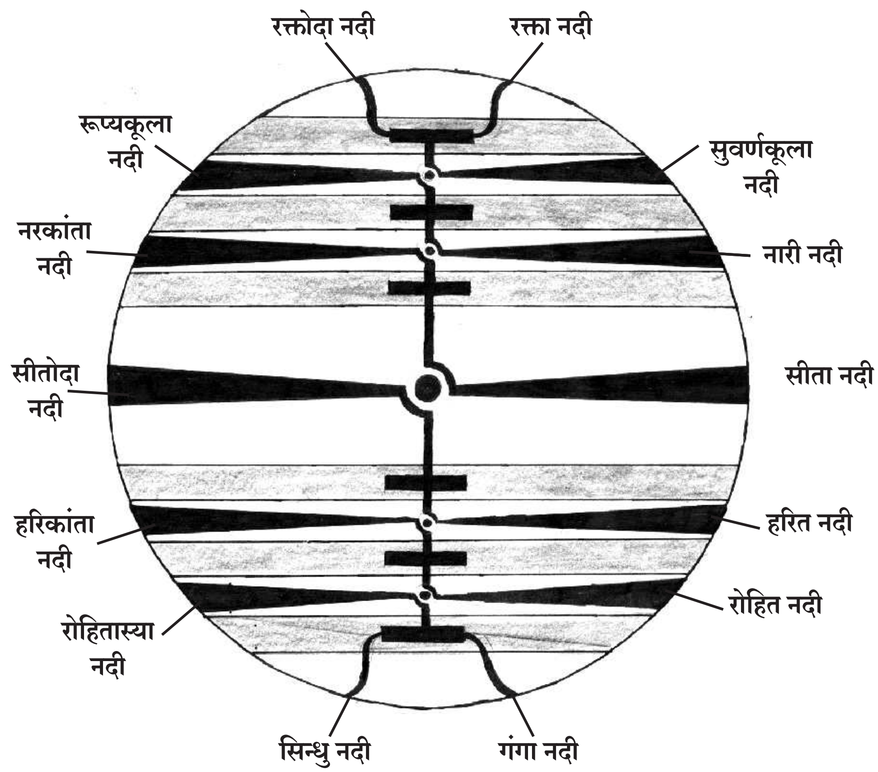

सरोवर (जिससे नदियाँ निकलती हैं)	नदियों के नाम	बहने का क्षेत्र	पूर्व समुद्र की ओर बहने वाली नदियाँ	पश्चिम समुद्र की ओर बहने वाली नदियाँ	परिवार नदियाँ
पद्म	गंगा	भरत	✓	x	14,000
	सिन्धु	भरत	x	✓	14,000
	रोहितास्या	हैमवत	x	✓	28,000
महापद्म	रोहित	हैमवत	✓	x	28,000
	हरिकांता	हरि	x	✓	56,000
तिगिञ्छ	हरित	हरि	✓	x	56,000
	सीतोदा	विदेह	x	✓	1,12000
केशरी	सीता	विदेह	✓	x	1,12000
	नरकान्ता	रम्यक	x	✓	56,000
महापुण्डरीक	नारी	रम्यक	✓	x	56,000
	रूप्यकूला	हैरण्यवत	x	✓	28,000
पुण्डरीक	सुवर्णकूला	हैरण्यवत	✓	x	28,000
	रक्ता	ऐरावत	✓	x	14,000
	रक्तोदा	ऐरावत	x	✓	14,000

नोट–जम्बूद्वीप में 6,16,000 सहायक नदियाँ है।

गंगा नदी

- पद्म सरोवर की पूर्व दिशा में स्थित वज्रद्वार से गंगा नदी निकलकर हिमवान् पर्वत के ऊपर 500 योजन पूर्व की ओर जाती है।
- गंगा कूट तक न पहुँच कर उससे आधा $\frac{1}{2}$ योजन पहले ही दक्षिण की ओर मुड़कर दक्षिण दिशा में $523\frac{29}{152}$ योजन को पार कर हिमवान् तट को प्राप्त होती हुई जिह्विका (नाली) को प्राप्त होती है।
- यह जिह्विका $6\frac{1}{4}$ योजन चौड़ी, 2 कोस मोटी और 2 कोस लम्बी है।
- इस नाली का मुख, कान, जिह्वा, नेत्रों का आकार सिंह के सदृश है किंतु भौंह मस्तक और सींग गाय के सदृश होने से इसे ''गोमुख'' या ''वृषभाकार'' भी कहते हैं।
- जहाँ गंगा नदी गिरती है वहाँ पर 60 योजन विस्तृत एवं 10 योजन गहरा 1 कुण्ड है। वह कुण्ड 4 तोरण और वेदिका से युक्त है।
- कुण्ड के मध्य में रत्नमयी 4 तोरण एवं वेदिकाओं से शोभायमान 1 द्वीप है।
- वह द्वीप 8 योजन चौड़ा एवं 1/2 योजन ऊँचा है।
- इस द्वीप के मध्य में 10 योजन ऊँचा, मूल में 4 योजन, मध्य में 2 योजन एवं ऊपर 1 योजन वज्रमय 1 पर्वत है।
- उस पर्वत पर बीचों-बीच रत्न, स्वर्ण से निर्मित गंगा देवी का प्रासाद बना हुआ है।
- प्रासाद की छत पर कमलासन पर अकृत्रिम जिन प्रतिमा जटाजूट युक्त शोभायमान है।
- गंगा नदी इसी नाली में प्रवेश कर हिमवान् पर्वत से नीचे गिरती है।

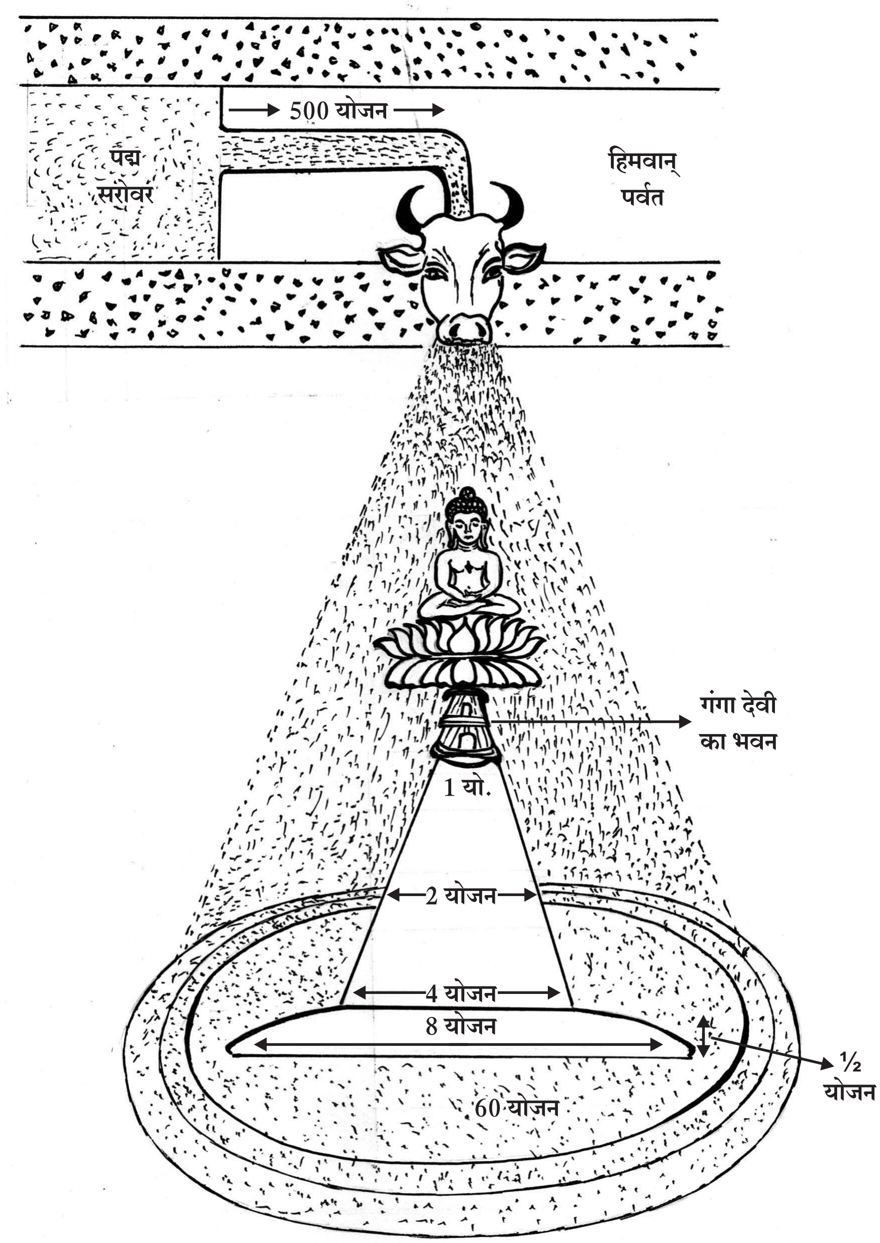
500 योजन
पद्म सरोवर
हिमवान् पर्वत
गंगा देवी का भवन
1 यो.
2 योजन
4 योजन
8 योजन
½ योजन
60 योजन

गंगा कुण्ड

- गंगा नदी अपनी चंचल तरंगों से युक्त होती हुई जलधारा से जिनेन्द्र देव का अभिषेक करते हुए के समान ही उस जिन प्रतिमा पर पड़ती है।
- पुन: इस कुण्ड के दक्षिण तोरण द्वार से निकलकर आगे भूमि पर कुटिलता को प्राप्त होती हुई विजयार्ध की गुफा में 8 योजन विस्तृत होती हुई प्रवेश करती है।
- विजयार्ध पर्वत की गुफा में 25 योजन जाने पर उन्मग्ना और निमग्ना ये 2 नदियाँ पूर्व-पश्चिम तोरण द्वारों से आकर गंगा नदी के प्रवाह में प्रवेश करती है।
- उन्मग्ना नदी का स्वभाव है- वह अपने जल प्रवाह में गिरे हुए भारी से भारी द्रव्य को ऊपर ले आती है।
- निमग्ना नदी हल्के से हल्के द्रव्य को नीचे ले जाती है।
- अंत में 14,000 परिवार नदियों से युक्त होकर पूर्व की ओर जाती हुई लवण समुद्र में प्रविष्ट होती है।
- ये 14,000 परिवार नदियाँ आर्यखण्ड में न बहकर म्लेच्छ खण्डों में ही बहती है।
- इसी गंगा नदी के समान ही सिन्धु नदी का वर्णन है।

भरत क्षेत्र का विस्तार

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भाग:।।32।।

सूत्रार्थ- (भरतस्य) भरतक्षेत्र का (विष्कम्भो) विस्तार (जम्बूद्वीपस्य) जम्बूद्वीप का (नवतिशतभाग:) 190वाँ भाग है।

भरत: षड्विंशति-पंच-योजन-शत-विस्तार: षट् चैकोनविंशति-भागा योजनस्य।।24।।

सूत्रार्थ– (भरत:) भरतक्षेत्र (षड्विंशति–पञ्चयोजनशत–विस्तार:) पाँच सौ छब्बीस योजन विस्तारवाला (च) और (योजनस्य) एक योजन के (एकोनविंशतिभागा:) उन्नीस भागों में से (षट्) छह भाग अधिक है। अर्थात् भरत क्षेत्र का विस्तार $526\,^6/_{19}$ योजन है।

पर्वतों और क्षेत्रों का विस्तार

तद्विगुण–द्विगुण–विस्तारा वर्षधर–वर्षा विदेहान्ता:।।25।।

सूत्रार्थ– (विदेहान्ता:) विदेह क्षेत्र पर्यन्त (वर्षधर वर्षा) पर्वत और क्षेत्रों का (विस्तारा) विस्तार (तद् द्विगुण–द्विगुण) भरत क्षेत्र के विस्तार से दूना–दूना है।

उत्तरा–दक्षिण–तुल्या:।।26।।

सूत्रार्थ– (उत्तरा) उत्तर के क्षेत्र और पर्वतों का विस्तार (दक्षिणतुल्या:) दक्षिण के क्षेत्र व पर्वतों के समान है।

भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के 190 भागों में से 1 भाग प्रमाण है।	190) 100000 (526 99940 60
190वाँ भाग में कितने योजन होंगे?	$526\frac{6}{19}$
जम्बूद्वीप का विस्तार 100000	$526\frac{6}{19}$ योजन भरत क्षेत्र का विस्तार

$526 \frac{6}{19} \times 2$

$1052 \frac{12}{19}$ योजन हिमवान् पर्वत का विस्तार

$1052 \frac{12}{19} \times 2$

$2105 \frac{5}{19}$ योजन हैमवत क्षेत्र का विस्तार

$2105 \frac{5}{19} \times 2$

$4210 \frac{10}{19}$ योजन महाहिमवान् पर्वत का विस्तार

$4210 \frac{10}{19} \times 2$

$8421 \frac{1}{19}$ योजन हरिक्षेत्र का विस्तार

$8421 \frac{1}{19} \times 2$

$16842 \frac{2}{19}$ योजन निषध पर्वत का विस्तार

$16842 \frac{2}{19} \times 2$

$33684 \frac{4}{19}$ योजन विदेह क्षेत्र का विस्तार

$33684 \frac{4}{19} \div 2$

$16842 \frac{2}{19}$ योजन नील पर्वत का विस्तार

$16842 \frac{2}{19} \div 2$

$8421 \frac{1}{19}$ योजन रम्यक् क्षेत्र का विस्तार

$8421 \frac{1}{19} \div 2$

$4210 \frac{10}{19}$ योजन रुक्मि पर्वत का विस्तार

$4210 \frac{10}{19} \div 2$

$2105 \frac{5}{19}$ योजन हैरण्यवत क्षेत्र का विस्तार

$2105 \frac{5}{19} \div 2$

$1052 \frac{12}{19}$ योजन शिखरी पर्वत का विस्तार

$1052 \frac{12}{19} \div 2$

$526 \frac{6}{19}$ योजन ऐरावत क्षेत्र का विस्तार

क्षेत्रों एवं पर्वतों का विस्तार

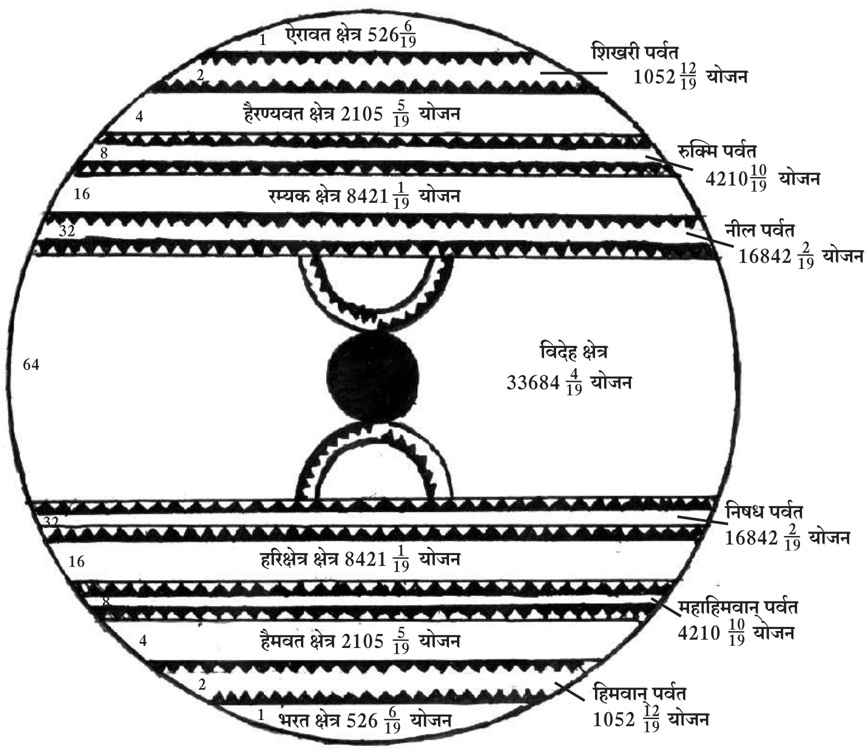

जम्बूद्वीप के क्षेत्रों का विस्तार

क्र.	क्षेत्र एवं पर्वत	शलाका	विस्तार (योजन में)
1.	भरत क्षेत्र	1	$526\frac{6}{19}$
2.	हिमवान् पर्वत	2	$1052\frac{12}{19}$
3.	हैमवत क्षेत्र	4	$2105\frac{5}{19}$
4.	महाहिमवान् पर्वत	8	$4210\frac{10}{19}$
5.	हरि क्षेत्र	16	$8421\frac{1}{19}$
6.	निषध पर्वत	32	$16842\frac{2}{19}$
7.	विदेह क्षेत्र	64	$33684\frac{4}{19}$
8.	नील पर्वत	32	$16842\frac{2}{19}$
9.	रम्यक क्षेत्र	16	$8421\frac{1}{19}$
10.	रुक्मि पर्वत	8	$4210\frac{10}{19}$
11.	हैरण्यवत क्षेत्र	4	$2105\frac{5}{19}$
12.	शिखरी पर्वत	2	$1052\frac{12}{19}$
13.	ऐरावत क्षेत्र	1	$526\frac{6}{19}$
	योग	190	

भरत और ऐरावत क्षेत्रों में काल परिवर्तन

भरतैरावतयोर्वृद्धि–ह्रासौ षट्समयाभ्या–मुत्सर्पिण्–यवसर्पिणीभ्याम्।।27।।

सूत्रार्थ– (भरतैरावतयो:) भरत और ऐरावत क्षेत्रों में (षट्समयाभ्या–मुत्सर्पिण्यव–सर्पिणीभ्याम्) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह कालों की अपेक्षा (वृद्धि–ह्रासौ) वृद्धि और ह्रास होता रहता है।

- भरत और ऐरावत क्षेत्र के आर्यखण्ड में ही काल का विभाग होता है।
- जिस काल में जीवों की आयु, अनुभव, ऊँचाई आदि में वृद्धि होती है वह ''उत्सर्पिणी काल'' है।
- अवसर्पिणी काल में आयु आदि का ह्रास (हानि) होती है।
- इसी प्रकार वहाँ के पुद्गल की शक्तियाँ, आकृतियाँ उत्पत्ति आदि में भी वृद्धि हानि होती है। जिस प्रकार वर्तमान में गेहूँ, दाल, फल, सब्जियाँ, पर्वत, कुआ, सरोवर आदि में भी पूर्व काल की अपेक्षा हानि देखी जा रही है।
- आयु – जीवन का परिमाण
- अवगाहना–शरीर की ऊँचाई,
- भोग–परिभोग की सम्पदा का अनुभव (भोग)।

	अवसर्पिणी काल		उत्सर्पिणी काल
1.	सुषमा–सुषमा	1.	दुषमा–दुषमा
2.	सुषमा	2.	दुषमा
3.	सुषमा–दुषमा	3.	दुषमा–सुषमा
4.	दुषमा–सुषमा	4.	सुषमा–दुषमा
5.	दुषमा	5.	सुषमा
6.	दुषमा–दुषमा	6.	सुषमा–सुषमा
10 कोड़ाकोड़ी सागर	+	10 कोड़ाकोड़ी सागर	
20 कोड़ाकोड़ी सागर			

1 कल्पकाल

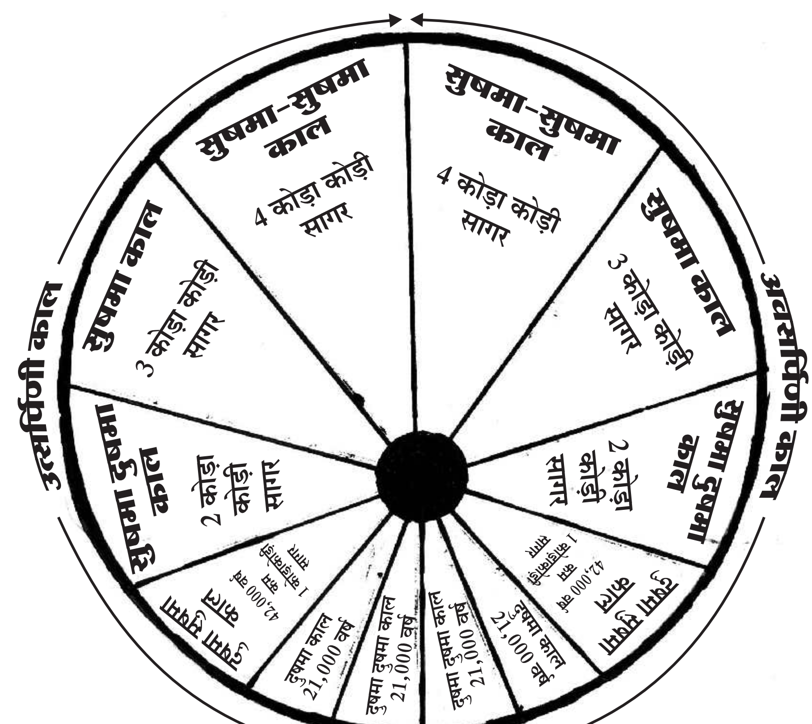

कालचक्र

सुषमा–सुषमा आदि तीन कालों में आयु, आहारादि की वृद्धि–हानि

क्र.	विषय	सुषमा–सुषमा	सुषमा	सुषमा–दुषमा
1.	भूमि–रचना	उत्तम भोगभूमि	मध्यम भोगभूमि	जघन्य भोगभूमि
2.	काल–प्रमाण	4 कोड़ाकोड़ी सागर	3 कोड़ाकोड़ी सागर	2 कोड़ाकोड़ी सागर
3.	आयु–उत्कृष्ट	3 पल्य	2 पल्य	1 पल्य
	जघन्य	2 पल्य	1 पल्य	1 समय+1 पूर्व कोटि
4.	आहार प्रमाण	बेर प्रमाण	बहेड़ा प्रमाण	आँवला प्रमाण
5.	अवगाहना–उत्कृष्ट	6000 धनुष	4000 धनुष	2000 धनुष
	जघन्य	4000 धनुष	2000 धनुष	500 धनुष
6.	आहार–अन्तराल	3 दिन बाद	2 दिन बाद	1 दिन बाद
7.	कवलाहार है किंतु निहार का	अभाव	अभाव	अभाव
8.	उत्तानशयन अंगूठा चूस	3 दिन पर्यन्त	5 दिन पर्यन्त	7 दिन पर्यन्त
9.	उपवेशन (बैठना)	3 दिन पर्यन्त	5 दिन पर्यन्त	7 दिन पर्यन्त
10.	अस्थिर गमन	3 दिन पर्यन्त	5 दिन पर्यन्त	7 दिन पर्यन्त
11.	स्थिर गमन	3 दिन पर्यन्त	5 दिन पर्यन्त	7 दिन पर्यन्त

सुषमा–सुषमा आदि तीन कालों में आयु, आहारादि की वृद्धि–हानि

क्र.	विषय	सुषमा–सुषमा	सुषमा	सुषमा–दुषमा
12.	कला गुण प्राप्ति	3 दिन पर्यन्त	5 दिन पर्यन्त	7 दिन पर्यन्त
13.	तारुण्य प्राप्ति	3 दिन पर्यन्त	5 दिन पर्यन्त	7 दिन पर्यन्त
14.	सम्यक्त्व–योग्यता	3 दिन पर्यन्त	5 दिन पर्यन्त	7 दिन पर्यन्त
15.	शरीर पृष्ठभाग की हड्डियाँ	256	128	64
16.	संयम	अभाव	अभाव	अभाव
17.	गुणस्थान अपर्याप्त में पर्याप्त में	मिथ्यात्व–सासादन पहले से चार तक	मिथ्यात्व–सासादन पहले से चार तक	मिथ्यात्व–सासादन पहले से चार तक
18.	शरीर की कान्ति	सूर्य प्रभा सदृश	पूर्ण चन्द्रप्रभा सदृश	प्रियंगु फल सदृश
19.	मरण के बाद शरीर	मेघवत् विलीन	मेघवत् विलीन	मेघवत् विलीन
20.	मरण बाद गति– मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि	 भवनत्रिक में दूसरे स्वर्ग पर्यन्त	 भवनत्रिक में दूसरे स्वर्ग पर्यन्त	 भवनत्रिक में दूसरे स्वर्ग पर्यन्त

दुषमा–सुषमा आदि तीन कालों में आयु, आहारादि की वृद्धि–हानि

क्र.	विषय	दुषमा–सुषमा	दुषमा	दुषमा–दुःषमा
1.	भूमि–रचना	कर्मभूमि	कर्मभूमि	कर्मभूमि
2.	काल–प्रमाण	42,000 वर्ष कम 1 कोड़ा–कोड़ी सागर	21000 वर्ष	21000 वर्ष
3.	आयु–उत्कृष्ट	1 पूर्व कोटी	120 वर्ष	20 वर्ष
	जघन्य	120 वर्ष	20 वर्ष	15 वर्ष
4.	आहार	प्रतिदिन 1 बार	बहुत बार	बारम्बार तीव्र गृद्धता के साथ
5.	अवगाहना–उत्कृष्ट	500 धनुष	7 हाथ	2 हाथ
	जघन्य	7 हाथ	2 हाथ	1 हाथ
6.	सम्यक्त्व योग्यता	8 वर्ष अंतर्मुहूर्त	8 वर्ष अंतर्मुहूर्त	अभाव
7.	शरीर पृष्ठभाग की हड्डियाँ	48	24	12
8.	संयम	देशसंयम/सकल संयम	देशसंयम/सकल संयम	अभाव

दुषमा–सुषमा आदि तीन कालों में आयु, आहारादि की वृद्धि हानि

क्र.	विषय	दुषमा–सुषमा	दुषमा	दुषमा–दुषमा
9.	गुणस्थान पर्याप्त	1 से 14	1 से 7	1
	अपर्याप्त	1,2,4,13,14	1,2, 4	1
10.	शरीर की कांति	पाँचों वर्ण	पाँचों वर्ण कांतिहीन	धूम्रवर्ण सदृश
11.	मरण के बाद गति	चारों	चारों	नरक–तिर्यंच
12.	संहनन	6	3 हीन	असंप्राप्तासृपाटिका
13.	संस्थान	6	3 हीन	हुण्डक

1. सुषमा-सुषमा काल का वर्णन

- इस काल में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था पाई जाती है।
- उत्तम भोगभूमि में मनुष्य एवं तिर्यंच गति के जीव पाये जाते हैं।
- भोगभूमि में विकलेन्द्रिय और असंज्ञी जीव नहीं होते।
- यहाँ स्वामी और भृत्य का भेद नहीं होता।
- कलह एवं युद्धादि तथा ईर्ष्या और रोगादि नहीं होते।
- प्रथम काल में नियम से रात-दिन का, भेद-अंधकार का, गर्मी-शीत की वेदना, निन्दा, परस्त्रीरमण-परधन हरण नहीं होता।
- वहाँ की भूमि रज, धूम, दाह और हिम से रहित साफ-सुथरी है।
- यहाँ की भूमिपर 4 अंगुल प्रमाण पंचवर्ण वाली मन एवं नयनों को हरण करने वाली उत्तम घास होती है।
- कल्हार (सफेद कमल) कुवलय और कुमुद एवं जल प्रवाह से परिपूर्ण जल-जन्तुओं से रहित वापिकाएँ होती हैं।
- भोगभूमियों के तिर्यंचों का भोजन वहाँ की पंचवर्ण वाली घास एवं पीने के लिए वापिकाओं का जल होता है।
- यहाँ के तिर्य्यंच शाकाहारी ही होते हैं।
- भोगभूमियों में अनेक प्रकार के अत्यंत रमणीय भवन होते हैं।
- वहाँ पर स्वर्ण एवं उत्तम रत्नों के समूह रूप नाना प्रकार के कल्पवृक्षों से परिपूर्ण, दीर्घिकादिक (सरोवरों) से युक्त पर्वत हैं।
- आयु के नवमास अवशेष रहने पर स्त्री को गर्भ रहता है।
- गर्भकाल पूर्ण होने पर बालक युगल रूप से उत्पन्न हुए, उत्तम व्यञ्जनों और चिह्नों से परिपूर्ण होते हैं।

- जन्म लेते ही माता को जम्भाई व पिता को छिंक आने से माता-पिता मरण को प्राप्त होते हैं। दोनों के शरीर शरद कालीन मेघ के समान विलीन हो जाते हैं।
- भोगभूमि में मरण को प्राप्त होने वाले सभी जीव नियम से देव गति को प्राप्त होते हैं।
- भोगभूमि में जन्में युगल क्रम से अँगूठा चूसने, बैठने, अस्थिर गमन करने, स्थिर गमन करने, कला गुणों की प्राप्ति-तारुण्य और सम्यक्त्व की योग्यता- इन प्रत्येक अवस्था को तीन-तीन दिन में व्यतीत करते हुए इक्कीस दिनों में स्वयमेव तरुण हो जाते हैं। अत: यहाँ इनके पालन-पोषण हेतु अन्य कोई पारिवारिक व्यवस्थाएँ नहीं होती हैं।
- इन भोगभूमि के मनुष्यों का बल ''नौ हजार'' हाथियों के प्रमाण वाला होता है।
- भोगभूमि के मनुष्यों में आहार तो होता है लेकिन निहार (मल-मूत्र) नहीं होता है।
- भोग भूमि के मनुष्यों में उत्तम प्रथम संहनन व उत्तम प्रथम संस्थान होता है।
- कदाचित् मनुष्य या तिर्यंचायु का बंध करके पुन: क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले मनुष्य व पंचेन्द्रिय तिर्यंच (पशु) इन भोगभूमियों में जन्म लेते हैं।
- वहाँ के मनुष्य व तिर्यंच में कोई जाति स्मरण से, कोई देवों से प्रतिबोधित होकर, कोई ऋद्धिधारी मुनियों के उपदेश से सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं। अथवा कर सकते हैं।

- भोगभूमि में उत्पन्न किन कारणों से होते हैं ?

1. मिथ्यात्वभाव से युक्त मंद कषायी
2. पैशून्य, असूयादि दम्भ से रहित
3. मांसाहार के त्यागी
4. मधु, मद्य तथा उदम्बर फलों के त्यागी
5. सत्यवादी
6. अभिमान से रहित
7. चोरी एवं परस्त्री के त्यागी
8. गुणियों के गुणों में अनुरक्त
9. जिनपूजा करने वाले
10. उपवास आदि करने वाले
11. आर्जवादि गुणों से सम्पन्न
12. यतियों को भक्ति से आहारदान देने में तत्पर
13. पात्र विशेष को दान देकर और दान की अनुमोदन करने से मनुष्य एवं तिर्यंच भी भोगभूमि में उत्पन्न होते हैं।

- कर्मभूमि की तरह यहाँ के मनुष्यों की आजीविका नहीं होती, बल्कि दस प्रकार के कल्पवृक्षों द्वारा उत्तम-उत्तम रीति से भोग भोग कर सुख का अनुभव करते हैं।

कल्पवृक्ष

1. **पानांग** - मधुर, सुस्वाद, छह रसों से युक्त प्रशस्त, अतिशीतल तुष्टि-पुष्टि कारक 32 प्रकार के पेय पदार्थों को प्रदान करते हैं।
2. **तूर्यांग** - उत्तम वीणा, पटु, पटह, मृदंग, झालर, शंख, दुदुंभि, भेरी, काहल आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के वादित्रों को देते हैं।

कल्प वृक्ष

नोटः–

- कल्पवृक्ष मात्र 10 नहीं होते 10 प्रकार की जातियों के होते हैं।
- इस चित्र में दस कल्पवृक्षों को एक में ही दिखाया गया है।

3. **भूषणांग** – कंकड़, कटिसूत्र, हार, केयूर, मंजीर, कटक, कुण्डल, किरीट और मुकुट आदि आभूषणों को प्रदान करते हैं।

4. **वस्त्रांग** – चीनपट (सूती वस्त्र) एवं उत्तम क्षौम (रेशमी) आदि वस्त्र तथा मन और नयनों को आनंदित करने वाले अनेक प्रकार के अन्य वस्त्रादि देते हैं।

5. **भोजनांग** – 16 प्रकार का आहार, 16 प्रकार के व्यंजन, 14 प्रकार के सूप–दाल आदि, 108 प्रकार के खाद्य पदार्थ, 363 प्रकार के स्वाद्य पदार्थ 63 प्रकार के रसभेदों को पृथक्–पृथक् दिया करते हैं।

6. **आलयांग** – स्वस्तिक तथा नंद्यावर्त आदि 16 प्रकार के रमणीय दिव्य भवन देते हैं।

7. **दीपांग** – प्रासादों में शाखा, प्रवाल (नवजात पत्र) फल, फूल, अंकुरादि के द्वारा जलते हुए दीपकों के समान प्रकाश देते हैं।

8. **भाजनांग** – स्वर्ण तथा बहुत प्रकार के रत्नों से निमित्त थाल, झारी, कलश, गागर, चामर आसनादि प्रदान करते हैं।

9. **मालांग** – वल्ली, तरु, गुच्छों और लताओं से उत्पन्न हुए 16 हजार भेद रूप पुष्पों की विविध मालाएँ देते हैं।

10. **तेजांग** – मध्य दिन के करोड़ों सूर्यों की किरणों के समान होते हुए नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रादि की कान्ति का संहरण करते हैं।

- ये सर्व कल्पवृक्ष पृथ्वीरूप हैं।

2. सुषमा काल का वर्णन

- अवसर्पिणी के द्वितीय काल में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था रहती है।
- मध्यम भोगभूमि के मनुष्यों के पृष्ठभाग की हड्डियाँ एक सौ अट्ठाइस होती हैं।
- मध्यम भोगभूमि में उपर्युक्त कहे गये सात प्रकार के कार्य पाँच-पाँच दिन के अन्तराल से होते हैं।
- अर्थात् 35 दिन में सम्यक्त्व प्राप्ति के योग्य हो जाते है।
- इस काल में मनुष्य समचतुरस्र संस्थान से युक्त होते है।
- शेष वर्णन सुषमा-सुषमा काल के वर्णन के समान है।

3. सुषमा-दुःषमा काल का वर्णन

- अवसर्पिणी काल के तृतीय काल में जघन्य भोगभूमि की व्यवस्था रहती है।
- जघन्य भोगभूमि के मनुष्यों के शरीर के पृष्ठभाग की हड्डियाँ चौंसठ होती हैं।
- जघन्य भोगभूमि में उपर्युक्त कहे गये सातों प्रकार के कार्य सात-सात दिन के अन्तराल से होते हैं अर्थात् उन्चास (49) दिन में यहाँ जीव सम्यक्त्व प्राप्ति के योग्य बन जाता है।
- शेष सर्व वर्णन सुषमा काल के समान होता है, आयु, बल आदि इसमें सब घटते जाते हैं।
- तीसरे काल के कुछ कम पल्य का आठवाँ भाग (1/8) शेष रहने पर 14 कुलकर उत्पन्न होते हैं।
- सभी कुलकर पूर्व भव में विदेह क्षेत्र के अंतर्गत महाकुल में राज-कुमार थे।
- ये सब कुलों के धारण करने से ''कुलधर'' और कुलों को करने में कुशल होने से ''कुलकर'' नाम से भी लोक में प्रसिद्ध है।

- कुलकर, कर्मभूमि सम्बन्धी समस्त रीतिओं को जानते हैं।
- उनमें कुछ अवधिज्ञानी होते हैं, किन्हीं को जातिस्मरण ज्ञान प्रगट हो जाता है।
- वे कर्मभूमि प्रगट होते समय प्रजा को यथायोग्य उपदेश, मार्गदर्शन देते हैं।
- सभी कुलकर अपने अर्थ सहित नाम के धारक हैं।

14 कुलकर के नाम*

क्र.	कुलकर	क्र.	कुलकर	क्र.	कुलकर
1.	प्रतिश्रुति	6.	सीमंधर	11.	चन्द्राभ
2.	सन्मति	7.	विमलवाहन	12.	मरुदेव
3.	क्षेमंकर	8.	चक्षुष्मान	13.	प्रसेनजित
4.	क्षेमंधर	9.	यशस्वी	14.	नाभिराय
5.	सीमंकर	10.	अभिचन्द्र		

4. दुषमा-सुषमा काल का वर्णन

- अवसर्पिणी काल के चतुर्थ काल में कर्मभूमि का प्रारम्भ होता है।
- चौथे काल में पुण्योदय से भरत क्षेत्र में मनुष्यों में श्रेष्ठ सम्पूर्ण लोक में प्रसिद्ध त्रेसठ शलाका पुरुषों का जन्म होने लगता है।
- तृतीय काल में 84 लाख पूर्व, 3 वर्ष, 8 मास और 1 पक्ष (15 दिन) के शेष रहने पर ऋषभदेव का जन्म हुआ।
- इसी काल के 3 वर्ष 8 मास 1 पक्ष के शेष रहने पर सिद्ध पद को प्राप्त किया। अर्थात् भगवान ऋषभदेव ने तीसरे काल में ही मोक्ष प्राप्त किया।
- भगवान ऋषभदेव के समय तृतीय काल में ही कर्मभूमि की व्यवस्था हो गयी थी।
- यह बात हुण्डावसर्पिणी के निमित्त से ही हुई।

* परिशिष्ट-7 कुलकरों की कार्य व्यवस्था पेज 155
* परिशिष्ट-8 कुलकरों के उत्सेध आयु एवं अंतरकाल पेज 157

24 तीर्थंकर

क्र.	तीर्थंकर	क्र.	तीर्थंकर	क्र.	तीर्थंकर
1.	ऋषभनाथ	9.	पुष्पदंत	17.	कुन्थुनाथ
2.	अजितनाथ	10.	शीतलनाथ	18.	अरनाथ
3.	सम्भवनाथ	11.	श्रेयांसनाथ	19.	मल्लिनाथ
4.	अभिनन्दननाथ	12.	वासुपूज्य	20.	मुनिसुव्रत
5.	सुमतिनाथ	13.	विमलनाथ	21.	नमिनाथ
6.	पद्मप्रभ	14.	अनंतनाथ	22.	नेमिनाथ
7.	सुपार्श्वनाथ	15.	धर्मनाथ	23.	पार्श्वनाथ
8.	चन्द्रप्रभ	16.	शांतिनाथ	24.	वर्धमान

12 चक्रवर्ती*

क्र.	चक्रवर्ती	क्र.	चक्रवर्ती	क्र.	चक्रवर्ती
1.	भरत	5.	शांतिनाथ	9.	पद्म
2.	सगर	6.	कुंथुनाथ	10.	हरिषेण
3.	मघवा	7.	अरनाथ	11.	जयसेन
4.	सनतकुमार	8.	सुभौम	12.	ब्रह्मदत्त

* ये बारह चक्रवर्ती 6 खण्डरूप पृथ्वी मण्डल को सिद्ध करने वाले, कीर्ति से भुवनतल को भरने वाले होते हैं।

9. बलभद्र*

क्र.	बलभद्र	क्र.	बलभद्र	क्र.	बलभद्र
1.	विजय	4.	सुप्रभ	7.	नंदिमित्र
2.	अचल	5.	सुदर्शन	8.	रामचन्द्र
3.	सुधर्म	6.	नंदी	9.	पद्म

* सब बलदेव निदान रहित होते हैं।
* सब बलदेव ऊर्ध्वगामी (स्वर्ग और मोक्षगामी) होते हैं।

---

* परिशिष्ट-9, चक्रवर्तियों का परिचय पेज 159
* परिशिष्ट-13, बलभद्रों का परिचय पेज 164

9 नारायण*

क्र.	नारायण	क्र.	नारायण	क्र.	नारायण
1.	त्रिपृष्ठ	4.	पुरुषोत्तम	7.	दत्त
2.	द्विपृष्ठ	5.	नरसिंह	8.	लक्ष्मण
3.	स्वयम्भू	6.	पुण्डरीक	9.	कृष्ण

✻ सब नारायण निदान सहित होते हैं।

✻ सब नारायण अधोगामी होते हैं।

9. प्रतिनारायण

क्र.	प्रतिनारायण	क्र.	प्रतिनारायण	क्र.	प्रतिनारायण
1.	अश्वग्रीव	4.	मधु कैटभ	7.	प्रहरण
2.	तारक	5.	निशुम्भ	8.	रावण
3.	मेरक	6.	बलि	9.	जरासन्ध

✻ ये 9 प्रतिशत्रु युद्ध में क्रमश: 9 वासुदेवों के हाथों से अपने ही चक्र के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होकर नरक भूमि में जाते हैं।

- इस काल में 169 पदवीधारी महापुरुष होते हैं।
- इनमें कुछ उसी भव से मोक्ष जाते हैं, कुछ परम्परा से मोक्ष जाते हैं।
- इनमें 63 शलाका पुरुष ही हैं, इनके अतिरिक्त 24 तीर्थंकरों के पिता, 24 तीर्थंकरों की माता, 24 कामदेव, 9 नारद, 11 रूद्र, 14 कुलकर गर्भित हैं।

✻ परिशिष्ट–14, नारायणों का परिचय पेज 165

24 तीर्थंकरों के माता-पिता

क्र.	तीर्थंकर	पिता	माता
1.	ऋषभनाथ	नाभिराय	मरुदेवी
2.	अजितनाथ	जितशत्रु	विजयासेना
3.	सम्भवनाथ	जितारि	सुसेना
4.	अभिनन्दननाथ	संवर	सिद्धार्था
5.	सुमतिनाथ	मेघप्रभ	मंगला
6.	पद्मप्रभ	धरण	सुसीमा
7.	सुपार्श्वनाथ	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वी
8.	चन्द्रप्रभ	महासेन	लक्ष्मीमती
9.	पुष्पदंत	सुग्रीव	रामा
10.	शीतलनाथ	दृढ़रथ	नन्दा
11.	श्रेयांसनाथ	विष्णु	वेणु देवी
12.	वासुपूज्य	वसुपूज्य	विजया
13.	विमलनाथ	कृतवर्मा	जयश्यामा
14.	अनंतनाथ	सिंहसेन	सर्वयशा
15.	धर्मनाथ	भानु	सुव्रता
16.	शांतिनाथ	विश्वसेन	ऐरा
17.	कुन्थुनाथ	सूर्यसेन	श्रीमती
18.	अरनाथ	सुदर्शन	मित्रा
19.	मल्लिनाथ	कुम्भ	प्रभावती
20.	मुनिसुव्रतनाथ	सुमित्र	पद्मा
21.	नमिनाथ	विजय	वप्रिला
22.	नेमिनाथ	समुद्रविजय	शिवादेवी
23.	पार्श्वनाथ	अश्वसेन	वामादेवी
24.	वर्धमान	सिद्धार्थ	त्रिशला (प्रियकारिणी)

24 कामदेव

क्र.	कामदेव	क्र.	कामदेव	क्र.	कामदेव
1.	बाहुबली	9.	श्रीवत्सराज	17.	राजानल
2.	अमिततेज	10.	कनकप्रभ	18.	हनुमान
3.	श्रीधर	11.	सिद्धवर्ण	19.	बलगंज
4.	यशभद्र	12.	शांतिनाथ	20.	वसुदेव
5.	प्रसेनजित	13.	कुन्थुनाथ	21.	प्रद्युम्न
6.	चन्द्रवर्ण	14.	अरनाथ	22.	नागकुमार
7.	अग्निमुक्त	15.	विजयराज	23.	श्रीपाल
8.	सनतकुमार	16.	श्रीचन्द्र	24.	जम्बूस्वामी

9 नारद

क्र.	नारद	क्र.	नारद	क्र.	नारद
1.	भीम	4.	महारूद्र	7.	दुर्मुख
2.	महाभीम	5.	काल	8.	नरकमुख
3.	रूद्र	6.	महाकाल	9.	अधोमुख

* रूद्रों के सदृश अतिरौद्र, पाप के निधान, कलह एवं युद्ध प्रिय होने से नरक को प्राप्त होते हैं।

11 रूद्र*

क्र.	रूद्र	क्र.	रूद्र	क्र.	रूद्र
1.	भीमावलि	5.	सुप्रतिष्ठ	9.	अजितनाभि
2.	जितशत्रु	6.	अचल	10.	पीठ
3.	रूद्र	7.	पुण्डरीक	11.	महादेव (सात्यकिसुत)
4.	विश्वानल	8.	अजितंधर		

* सब रूद्र दसवें पूर्व का अध्ययन करते समय विषयों के निमित्त तप से भ्रष्ट होकर सम्यक्त्वरूपी रत्न से रहित होते हुए घोर नरकों में डूब जाते हैं।

* परिशिष्ट-15, रूद्रों का परिचय पेज 166

5. दुषमा काल का वर्णन

- भगवान महावीर निर्वाण के 3 वर्ष 8 माह 15 दिन पश्चात् दुषमा काल का प्रारम्भ हुआ।
- इस काल में मनुष्यों के पृष्ठभाग की हड्डियाँ 24 होती हैं।
- जिस दिन भगवान महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणधर को केवज्ञान प्राप्त हुए।
- गौतम गणधर के सिद्ध होने पर सुधर्मस्वामी केवली हुए।
- सुधर्मस्वामी के कर्मनाश करने पर जम्बूस्वामी केवली हुए।
- जम्बूस्वामी के सिद्ध होने के पश्चात् फिर कोई अनुबद्ध केवली नहीं हुआ।
- इस काल में हजार–हजार वर्ष के बाद 1–1 कल्की राजा और प्रत्येक कल्की के मध्य 1–1 उपकल्की राजा होता है।
- इस प्रकार इस काल में 21 कल्की और 21 उपकल्की कुल 42 राजा होते हैं।
- भगवान महावीर निर्वाणोपरान्त 605 वर्ष 5 माह के बाद विक्रमजीत उपकल्की राजा हुआ। इससे 394 वर्ष 7 माह व्यतीत होने के बाद पहला चतुर्मुख कल्की राजा हुआ।
- दुषमा काल में सभी औषधियाँ नीरस हो जाती हैं।
- चोर, राजकुल, शत्रु, मारी आदि अनेक प्रकार के घोर उपसर्ग होने लगते हैं।
- इस काल में विनय से हीन एवं चिंता से युक्त मनुष्य राग, दम्भ, मद, क्रोध एवं लोभ से क्लेशित होते हुए निर्दयता एवं ईर्ष्या की मूर्ति होते हैं।

- इस काल के दोष से सभी धर्मों का परित्याग करते हुए अज्ञान युक्त, परदारासक्त और कुलहीन राजा प्रजा का पालन करते हैं।
- इस दुषमाकाल में संयत गुण से विशिष्ट मनुष्यों के अभाव के कारण चारण ऋद्धिधारी मुनि, कल्पवासी देव और विद्याधर नहीं आते।
- कालक्रमानुसार 19 कल्की राजा हो जाने के बाद इस पंचमकाल के अंत में 21वाँ ''जलमन्थन'' कल्की होगा।
- उस समय इन्द्रराज आचार्य के शिष्य वीरांगज नामक अंतिम मुनि सर्वश्री नाम की आर्यिका, अग्निल और पंगुश्री श्रावक युगल ये 4 संयमी जीव होंगे।
- उस समय कल्की द्वारा निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनिराज पर टैक्स (कर) निर्धारित कर मंत्रियों को वसूली का आदेश देगा पश्चात् निर्ग्रंथ मुनिराज से प्रथम ग्रास मांगे जाने पर मुनिराज तुरंत ग्रास देकर अंतराय मानकर वन में चले जाएँगे तथा अवधिज्ञान प्राप्त कर लेगे।
- अवधिज्ञान से अल्पायु जानकर वीरांगज मुनिराज शेष आयु पर्यन्त चारों प्रकार के आहार का त्याग कर, तीन दिन बाद कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन स्वाति नक्षत्र में प्रात:काल देह छोड़कर सौधर्म स्वर्ग में देव होंगे।
- आर्यिका, श्रावक और श्राविका भी समाधिमरण कर उसी स्वर्ग में देव होंगे।
- चमरेन्द्र राजा ''जलमन्थन'' का घात करेगा, जिससे वह मरकर पहली रत्नप्रभा पृथ्वी में चला जाएगा।
- अपराह्न में पुद्‌गल द्रव्य की रूक्षता के कारण अग्नि का नाश हो जाएगा।

6. दुषमा-दुषमा काल का वर्णन

- इस काल में मनुष्य क्षुधा की वेदना से मछली आदि जीवों के मांस का भक्षण करेंगे, किसी को भी अन्न खाने को नहीं मिलेगा।
- इस समय मनुष्यों को वस्त्र और मकान आदि दिखाई नहीं देते, इसलिए सब मनुष्य नंगे और मकानों से रहित होते हुए वनों में घूमते है।
- यहाँ के मनुष्य पशुओं सदृश आचरण करने वाले होते हैं।
- क्रूर, बहरे, अंधे, गूंगे, दरिद्रता एवं कुटिलता से परिपूर्ण होते है।
- जूँ, लीख आदि से आच्छन्न दुर्गन्ध युक्त शरीर एवं केशों वाले होते हैं।
- बंदर सदृश रूप वाले अतिम्लेच्छ हुण्डक संस्थान युक्त, कुबड़े, बौने शरीर वाले होते है।
- नाना प्रकार की व्याधियों-वेदनाओं से विकल, बहुत क्रोध-लोभ-मोह से युक्त खूब खाने वाले होते हैं।
- इस काल में मरणकर जीव नरक या तिर्यञ्च गति को ही प्राप्त करेंगे तथा यहाँ उत्पन्न होने वाले जीव नरक या तिर्यञ्च गति से ही आएँगे।
- इस काल के 49 दिन अवशेष रहने पर भरत एवं ऐरावत सम्बन्धी आर्यखण्ड के पर्वत, वृक्ष, पृथ्वी आदि को चूर्ण करती हुई 7 दिन तक सम्वर्तक पवन चलती है, जिससे सभी जीव भय को प्राप्त होते हैं।
- भय से विलाप करते हुए जीवों को देखकर दयार्द्र चित्तधारी देव विद्याधर अनेक स्त्री-पुरुष रूप मनुष्यों और तिर्यंचों के युगलों को बाधा रहित शुभ-स्थानों पर भेज देते हैं।

- 72 युगल ही गुफादि में प्रवेश करते हैं ऐसा नहीं है आयु शेष वाले संख्यात जीव वहाँ प्रवेश कर सुरक्षित हो जाते हैं।
- इस काल में अगले 7–7 दिनों तक 2. अति शीत वर्षा, 3. क्षार विष/कड़वे रस रूप जहर, 4. पत्थर, कंकड़ आदि रूक्ष–कठोर वस्तु रूप उपल, 5. अग्नि, 6. रज/रेत, मिट्टी रूप धुल, 7. धुआँ की वर्षा होने के कारण यहाँ रह रहे सभी प्राणी मर जाते हैं।
- प्रलयकाल के प्रभाव से विष और अग्नि की वर्षा के कारण दग्ध हुई पृथ्वी 1 योजन नीचे तक चूर्ण हो जाती है।
- यह अवसर्पिणी के अंतिम छठवें दुषमा–दुषमा काल की व्यवस्था है।

उत्सर्पिणी काल के प्रथम दुषमा-दुषमा काल का वर्णन

- यहाँ की स्थिति अवसर्पिणी काल के छठवें काल के समान ही वृद्धि को लिए हुए रहती है। अंतर बस इतना आ जाता है कि इसके प्रारम्भ में 7–7 दिन के अंतराल से क्रमश: 1 क्षीर जल, 2. दुग्ध, 3. घी, 4. अमृत आदि की वर्षा से पृथ्वी शीतल, शोभायुक्त हो अन्नादि विविध वस्तुओं को उत्पन्न करने की सामर्थ्य हो जाती है।
- पश्चात् शीतल गंध को ग्रहणकर वे मनुष्य और तिर्यञ्च गुफाओं से बाहर निकल आते हैं।
- आगे के कालों का वर्णन पूर्ववत् ही जानना।

✻ हुण्डावसर्पिणी काल किसे कहते हैं?

जिसमें योग्य प्रवृत्ति से विपरीत अयोग्य प्रवृत्तिओं की बहुलता होती है।

जैसे– • इस काल में त्रिपृष्ठ नारायण का जीव अंतिम तीर्थंकर महावीर हो गया।

- शांति–कुंथु–अरनाथ ये तीन तीर्थंकर, चक्रवर्ती हो गए। इस कारण 63 शलाका पुरुषों में से 4 जीवों का कम हो जाना।
- प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पाँचों कल्याण सुषमा–दुषमा काल में होना।
- नौंवें से लेकर सोलहवें तीर्थंकर पर्यंत धर्म की व्युच्छित्ति होना।
- प्रथम चक्रवर्ती भरत का तीसरे (सुषमा–दुषमा) काल में चक्रवर्ती होना।
- चक्रवर्ती (चक्ररत्न) का अपमान होना।
- तीर्थंकर (गृहस्थ) के पुत्री होना।
- तीर्थंकर (मुनि) के ऊपर उपसर्ग होना।
- पाँच तीर्थंकरों का बाल ब्रह्मचारी होना।
- अयोध्या को छोड़कर अन्यत्र जन्म, और सम्मेदशिखर को छोड़कर अन्य स्थानों से मोक्ष होना आदि।

- हुण्डावसर्पिणी काल कब आता है ?

  असंख्यात कल्पकाल की शलाकाएँ व्यतीत हो जाने के बाद।

शेष भूमियों की अवस्था

ताभ्यामपरा–भूमयोऽवस्थिता: ।।28।।

सूत्रार्थ– (ताभ्यामपरा) भरत और ऐरावत के सिवा (भूमय:) शेष भूमियाँ (अवस्थिता:) अवस्थित हैं। अर्थात् उनमें काल परिवर्तन नहीं होता है।

अवस्थित भूमियों में मनुष्यों की स्थिति

एक–द्वि–त्रि–पल्योपम–स्थितयो हैमवतक–हारिवर्षक–दैवकुरवका: ।।29।।

सूत्रार्थ– (हैमवतक–हारिवर्षक–दैवकुरवका:) हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु के प्राणियों की (स्थितय:) आयु स्थिति क्रम से (एक–द्वि–त्रिपल्योपम) एक, दो और तीन पल्य प्रमाण है।

उत्तरवर्ती क्षेत्रों की स्थिति

तथोत्तरा: ।।30।।

सूत्रार्थ–दक्षिण के समान उत्तर में है। अर्थात् हैमवत आदि क्षेत्रों के समान हैरण्यवत आदि क्षेत्रों की व्यवस्था है।

अवस्थित भूमियों के काल

क्षेत्र का नाम	काल	स्थिति (उत्कृष्ट)
देवकुरु–उत्तरकुरु	प्रथम काल–उत्तम भोगभूमि	3 पल्य
हरि–रम्यक	दूसरा काल–मध्यम भोगभूमि	2 पल्य
हैमवत–हैरण्यवत	तीसरा काल–जघन्य भोगभूमि	1 पल्य
विदेह	चौथे काल का आदि	1 पूर्व कोटि
कुभोगभूमि–अंतर्द्वीपज	तीसरा काल तुल्य	1 पल्य
मानुषोत्तर पर्वत से स्वयंभूरमण पर्वत तक असंख्यात द्वीप एवं समुद्र	तीसरा काल तुल्य	1 पल्य
अंत का आधा स्वयंभूरमण द्वीप, स्वयंभूरमण समुद्र एवं चार कोने	पंचम काल तुल्य	120 वर्ष
देवगति	प्रथम काल तुल्य	33 सागर
नरक गति	छठा काल तुल्य	33 सागर
भरत एवं ऐरावत के पाँच म्लेच्छ खण्ड एवं विद्याधरों की श्रेणियाँ	चौथे काल के आदि से लगाकर उसी के अंत तक हानि–वृद्धि	–
भरत एवं ऐरावत	षट्काल परिवर्तन	–

विदेहक्षेत्रों में जीवों की आयु

विदेहेषु संख्येय–कालाः ।।31।।

सूत्रार्थ– (विदेहेषु) विदेहों में (संख्येय–कालाः) संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य होते हैं।

मनुष्यों की उत्कृष्ट व जघन्य आयु

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योप–मान्तर्मुहूर्ते।।38।।

सूत्रार्थ– (नृस्थिती) मनुष्यों की स्थिति (परा) उत्कृष्ट (त्रिपल्योपम्) तीन पल्य और (अवर) जघन्य (अन्तर्मुहूर्ते) अन्तर्मुहूर्त है।

तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु

तिर्यग्योनिजानां च।।39।।

सूत्रार्थ– (तिर्यग्योनिजानां च) तिर्यञ्चों की भी स्थिति उतनी ही है।

- विदेह क्षेत्र के जीवों की आयु संख्यात वर्ष अथवा 1 पूर्व कोटि की है।
- 1 पूर्व कोटि निकालने की विधि क्या है ?

1 पूर्वांग – 8400000 वर्ष

1 पूर्व – 8400000 x 8400000

70560000000000

(7 नील 5 खरब 60 अरब)

1 पूर्व कोटि – 70560000000000 x 10000000

705600000000000000000

विदेह क्षेत्र के जीवों की उत्कृष्ट आयु 70,56,00,00,00,00,00,00,00,000 वर्ष (1 पूर्व कोटि प्रमाण है)। (70 लाख 56 हजार करोड़ वर्ष)

- भोगभूमि के मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट स्थिति ''तीन पल्य''।
- मध्यम स्थिति ''2 पल्य'' ''जघन्य'' और ''उत्कृष्ट'' के मध्य अनेक प्रकार की है।
- जघन्य स्थिति ''अंतर्मुहूर्त''।

तिर्यंचों की आयु-विशेष

जीव	उत्कृष्ट आयु	जीव	उत्कृष्ट आयु
मृदु (शुद्ध) पृथ्वीकायिक	12,000 वर्ष	तीन इन्द्रिय	49 दिन-रात
कठोर (खर) पृथ्वीकायिक	22,000 वर्ष	चार इन्द्रिय	6 मास
जलकायिक	7,000 वर्ष	पंचेन्द्रिय जलचर	1 कोटि पूर्व
वायुकायिक	3,000 वर्ष	सरीसर्प रेंगने वाले पशु	9 पूर्वांग
अग्निकायिक	3 दिन-रात	सर्प	42,000 वर्ष
साधारण वनस्पतिकायिक	10,000 वर्ष	पक्षी	72,000 वर्ष
दो इन्द्रिय	12 वर्ष	चौपाये पशु	3 पल्य
निगोदिया जीव की जघन्य आयु श्वास का 18वां भाग है।			

नोट-

- **48 मिनिट में 3773 श्वास होते हैं।**
- **1 मिनिट में $78\frac{29}{48}$ या 78.61 श्वास होते हैं।**
- **1 श्वास = 0.76 सेकेण्ड**
- **0.76 सेकेण्ड में 18 बार जन्म-मरण हो जाता है।**

उपमान

- गणना के द्वारा कहने में असमर्थ ऐसी राशि,
- किसी उपमा के द्वारा प्रतिपादन करना।

पल्य	सागर	सूच्यंगुल	जगत्श्रेणी
(गड्ढा)		प्रतरांगुल	जगत्प्रतर
		घनांगुल	जगतघन (लोक)

- व्यवहार – रोमखण्ड़ों का प्रमाण
- उद्धार – द्वीप–समुद्रों की संख्या
- अद्धा – कर्मों की स्थिति आदि

व्यवहाल पल्य

- 1 योजन प्रमाण गहरा और उतना ही चौड़ा गड्ढा करना।
- उत्तम भोगभूमि में जन्में 7 दिन तक के मेंढ़े के बालों के अग्रभाग से उस गड्ढे को ठोस भरना।
- पुनः–पुनः 1–1 रोमखण्ड़ को 100–100 वर्ष जाने पर निकालेंगे, तो जितने काल में वे सब समाप्त होंगे वो व्यवहार पल्य का काल आयेगा।
- व्यवहार पल्य के रोमों की संख्या ?

  41345263030820317774951219200000000000000000

अथवा

$(65536)^5 X 18 X 19 X 10^{18}$

व्यवहार पल्य के समय निकालने का प्रमाण

1 युग	5 वर्ष
1 वर्ष	2 अयन
1 अयन	3 ऋतु (6 माह)
1 ऋतु	2 मास
1 पक्ष	15 दिन
1 मास	30 अहोरात्री (2 पक्ष)
1 अहोरात्री	30 मुहूर्त (24 घंटे)
1 मुहूर्त	संख्या हजार कोड़ाकोड़ी आवली अथवा 48 मिनिट
1 अंतर्मुहूर्त	1 समय से ऊपर तथा मुहूर्त से कम समय
1 आवली	जघन्य युक्त असंख्या प्रमाण समय

*** उद्धार पल्य**

- व्यवहार पल्य की रोम राशि में से प्रत्येक रोमखण्ड़ के
- असंख्यात करोड़ वर्षों के जितने समय हो उतने खण्ड़ करके
- उनसे दूसरे पल्य को भरकर
- पुन: 1–1 समय में 1–1 रोम खण्ड़ निकालें
- इस प्रकार जितने समय में वह दूसरा पल्य खाली होता है, उतना काल उद्धार पल्य का है।
- व्यवहार पल्य की रोम संख्या x असंख्यात करोड़ वर्षों के समय= उद्धार पल्य के समय।

*** अद्धा पल्य**

- उद्धार पल्य की रोम राशि में से प्रत्येक रोमखण्ड़ के
- असंख्यात वर्षों के जितने समय हो उतने खण्ड़ करके

- उनसे दूसरे पल्य को भरकर
- पुन: 1–1 समय में 1–1 रोम खण्ड़ निकालें
- इस प्रकार जितने समय में वह दूसरा पल्य खाली होता है, उतना काल अद्धा पल्य का है।
- उद्धार पल्य के समय x असंख्यात वर्षों के समय

सागर	
1 सागर = 10 कोड़ाकोड़ी पल्य	
व्यवहार सागर	व्यवहार पल्य x 10 कोड़ाकोड़ी
उद्धार सागर	उद्धार पल्य x 10 कोड़ाकोड़ी
अद्धा सागर	अद्धा पल्य x 10 कोड़ाकोड़ी

परमाणु-

स्कंध के अविभागी (जिसके और विभाग न हो सके) अंश को परमाणु कहे हैं।

सत्थेण सु–तिक्खेणं छेत्तुं भेत्तुं च जं किरण सक्को।
जल अणलादिहिं णासं, ण एदि सो होदि परमाणू।।96।।
(तिलोयपण्णत्ती)

जो अत्यंत तीक्ष्ण शस्त्र से भी छेदा या भेदा नहीं जा सकता तथा जल और अग्नि आदि के द्वारा नाश को प्राप्त नहीं होता वह परमाणु है।

उत्सेधांगुल का विधान

अनंतानंत परमाणु	1 अवसन्नासन्न = स्कंध
8 अवसन्नासन्न	1 सन्नासन्न
8 सन्नासन्न	1 तृटरेणु
8 तृटरेणु	1 त्रसरेणु
8 त्रसरेणु	1 रथरेणु
8 रथरेणु	1 उत्तम भोगभूमि का बालाग्र
8 उत्तम भोगभूमि के बालाग्र का	1 मध्यम भोगभूमि का बालाग्र
8 मध्यम भोगभूमि के बालाग्र का	1 जघन्य भोगभूमि का बालाग्र
8 जघन्य भोगभूमि के बालाग्र का	1 कर्मभूमि के मनुष्य का बालाग्र
8 कर्मभूमि के बालाग्र की	1 लींख
8 लींख की	1 सरसों
8 सरसों का	1 जौ
8 जौ का	1 उत्सेधांगुल

तीन प्रकार के अंगुल

क्र.	अंगुल	परिणाम	क्या नापे ?
1.	उत्सेधांगुल (व्यवहार)	उपर्युक्त अनुसार	देव, मनुष्य तिर्यंच एवं नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण, चारों प्रकार के देवों के निवास स्थान एवं नगरादिक को।
2.	प्रमाणांगुल	उत्सेधांगुल x500 अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती भरत के 1 अंगुल का प्रमाण	द्वीप, समुद्र, कुलाचल वेदी, नदी, कुण्ड (सरोवर) भरतादिक क्षेत्र को।
3.	आत्मांगुल	भरत ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यों के अंगुल का प्रमाण	झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, युग, शय्या शकत (गाड़ी), हल,मूसल, शक्ति, तोमर, सिंहासन, वाण, नालि, अक्ष, चमर, दुन्दुभि, पीठ छत्र मनुष्यों के निवास-स्थान

विशेष

- ''जम्बूवृक्ष'' का नाप ''उत्सेधांगुल'' से
- ''जिनप्रतिमा'' का नाप ''उत्सेधांगुल'' से।
- ''तारा विमान'' का नाप ''उत्सेधांगुल'' से। (धवला पुस्तक 4-160-161)
- ''तारा विमान'' का नाप ''प्रमाणांगुल'' से। (राजवार्तिक 3-38-6-208)
- ''सूर्य विमान'' का नाप ''प्रमाणांगुल'' से।
- ''जिनभवन'' का नाप ''प्रमाणांगुल'' से।

जगतश्रेणी

- (घनांगुल) पल्य के अर्धच्छेद का असंख्यातवाँ भाग

= 7 राजू

= 7 राजू प्रमाण आकाश की 1 प्रदेश की 1 पंक्ति में प्रदेशों की संख्या।

जगत्प्रतर

(जगत्श्रेणी)^2

जगतघन

(जगतश्रेणी)^3

- लोक के प्रदेशों की संख्या
- इतने ही 1 जीव के प्रदेशों की संख्या है।
- यह संख्या मध्यम असंख्यातासंख्यात प्रमाण है।

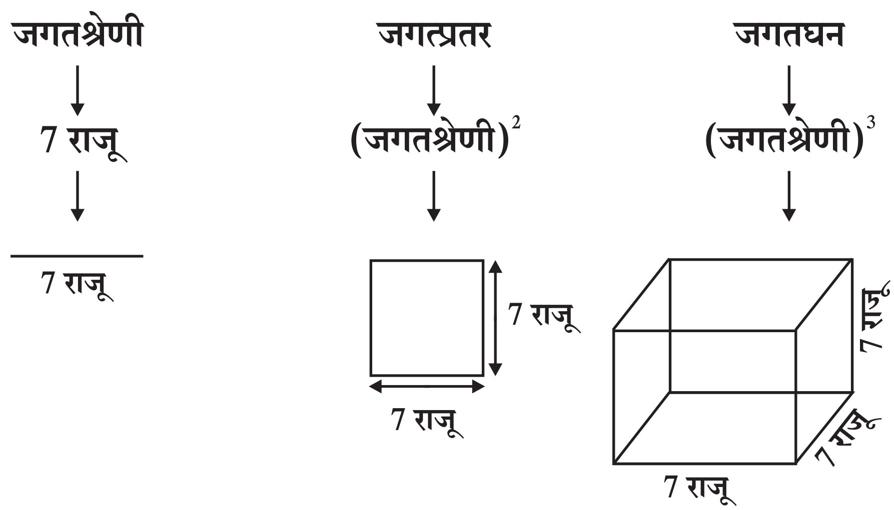

धातकीखण्ड द्वीप में क्षेत्र, पर्वत आदि की संख्या

द्विर्धातकीखण्डे।।33।।

सूत्रार्थ – धातकीखण्ड़ में क्षेत्र तथा पर्वतादि जम्बूद्वीप से दूने हैं।

अर्द्ध पुष्कर द्वीप में क्षेत्र व पर्वत

पुष्करार्द्धे च।।34।।

सूत्रार्थ–अर्द्ध पुष्करद्वीप में उतने ही हैं।

ढ़ाई द्वीप

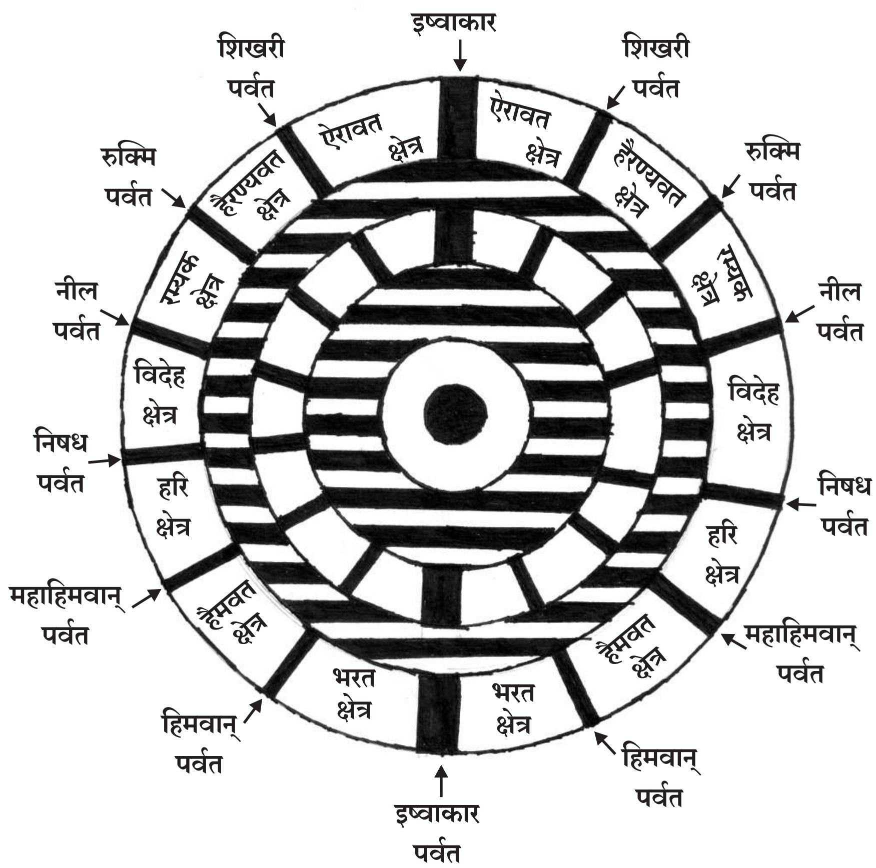

धातकीखण्ड

- ✻ यह द्वीप लवण समुद्र को घेरकर 4 लाख योजन व्यास वाला है।
- ✻ इसके अंदर पूर्व दिशा में बीचोबीच ''विजयमेरु'' और पश्चिम दिशा में ''अचल मेरु'' स्थित है।
- ✻ दक्षिण और उत्तर में दोनों तरफ समुद्र को स्पर्श करते हुए 2 इष्वाकार पर्वत हैं।
- ✻ जिससे इस द्वीप के पूर्व–पश्चिम धातकीखण्ड़ ऐसे 2 भेद हो जाते हैं।
- ✻ ये पर्वत 1000 योजन विस्तार और 100 योजन अवगाह वाले स्वर्णमयी हैं।
- ✻ प्रत्येक पर्वत पर 4–4 उत्तम कूट हैं।
- ✻ प्रथम कूट पर जिनभवन और शेष कूटों पर व्यन्तरों के पुर हैं।
- ✻ पूर्व धातकीखण्ड़ द्वीप में हिमवान् आदि 6 पर्वत, भरत आदि 7 क्षेत्र गंगा आदि 14 प्रमुख नदियाँ बहती है।
- ✻ पश्चिम धातकीखण्ड़ में भी यही सब व्यवस्था है।
- ✻ इस द्वीप में पृथ्वीकायिक अनादिनिधन धातकी (आंवले का) वृक्ष हैं। इसी कारण इस द्वीप का नाम ''धातकीखण्ड़'' पड़ा।
- ✻ इस वृक्ष पर प्रवास और प्रियदर्शन नामक अधिपति देव निवास करते हैं।
- ✻ इसके 5,60,480 परिवार वृक्ष हैं।
- ✻ शेष वर्णन जम्बूवृक्ष वत् जानना चाहिए।

पुष्करार्ध द्वीप

- ✻ कालोदधि समुद्र को वेष्टित करके 16 लाख योजन विस्तार वाला पुष्करवर द्वीप है।
- ✻ इसके बीचोंबीच चूड़ी के समान आकार वाला मानुषोत्तर पर्वत स्थित है।
- ✻ इसमें भी दक्षिण–उत्तर में इष्वाकार पर्वत है।
- ✻ ये पर्वत भी 2000 योजन विस्तार और 200 योजन अवगाह वाले स्वर्णमई हैं।
- ✻ पूर्व पुष्करार्ध में ''मंदरमेरु'' तथा पश्चिम पुष्करार्ध में ''विद्युन्माली मेरु'' पर्वत स्थित है।
- ✻ इसमें भी दोनों तरफ भरत आदि क्षेत्र, हिमवान् आदि पर्वत हैं।
- ✻ पुष्कर वृक्ष के कारण इस द्वीप का नाम पुष्करवर द्वीप पड़ा।
- ✻ इसके परिवार वृक्ष 5,60,480 हैं।

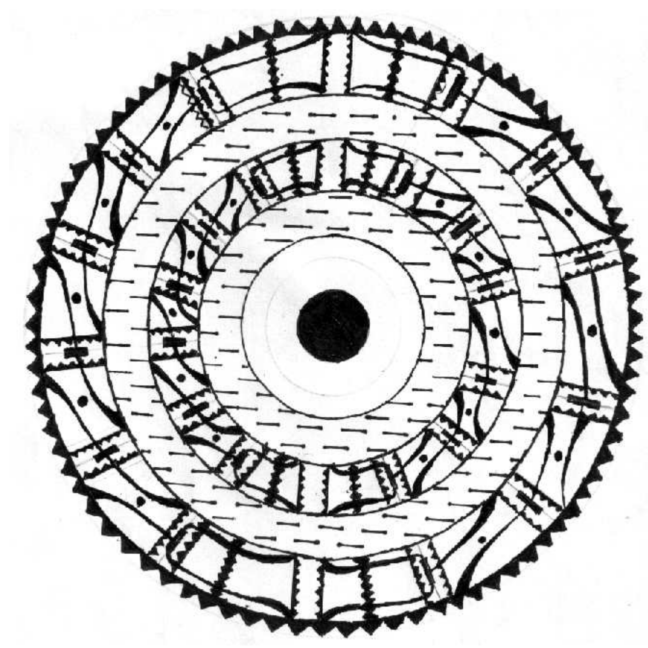

धातकीखण्ड द्वीप में स्थित क्षेत्रों और कुलाचलों का विस्तार

क्र.	क्षेत्र/पर्वत	विस्तार (योजन में)	अभ्यन्तर विस्तार (योजन में)	मध्य विस्तार (योजन में)	बाह्य विस्तार (योजन में)
1.	भरत क्षेत्र	–	$6614\frac{129}{212}$	$12581\frac{36}{212}$	$18547\frac{155}{121}$
2.	हिमवान् पर्वत	$2105\frac{5}{19}$	–	–	–
3.	हैमवत क्षेत्र	–	$26458\frac{92}{212}$	$50324\frac{144}{212}$	$74190\frac{196}{121}$
4.	महाहिमवान् पर्वत	$8421\frac{1}{19}$	–	–	–
5.	हरि क्षेत्र	–	$105833\frac{156}{212}$	$201298\frac{152}{212}$	$296763\frac{148}{121}$
6.	निषध पर्वत	$33684\frac{4}{19}$	–	–	–
7.	विदेह क्षेत्र	–	$423334\frac{200}{212}$	$805194\frac{64}{212}$	$118705\frac{155}{121}$
8.	नील पर्वत	$33684\frac{4}{19}$	–	–	–
9.	रम्यक क्षेत्र	–	$105833\frac{156}{212}$	$201298\frac{152}{212}$	$296763\frac{148}{121}$
10.	रुक्मि पर्वत	$8421\frac{1}{19}$	–	–	–
11.	हैरण्यवत क्षेत्र	–	$26458\frac{92}{212}$	$50324\frac{144}{212}$	$74190\frac{196}{121}$
12.	शिखरी पर्वत	$2105\frac{5}{19}$	–	–	–
13.	ऐरावत क्षेत्र	–	$6614\frac{129}{212}$	$12581\frac{36}{212}$	$18547\frac{155}{121}$

अर्द्धपुष्करवर द्वीप में स्थित क्षेत्रों और कुलाचलों का विस्तार

क्र.	क्षेत्र/पर्वत	विस्तार (योजन में)	अभ्यन्तर विस्तार (योजन में)	मध्य विस्तार (योजन में)	बाह्य विस्तार (योजन में)
1.	भरत क्षेत्र	–	$41579 \frac{173}{212}$	$53512 \frac{199}{212}$	$65446 \frac{13}{212}$
2.	हिमवान् पर्वत	$8421 \frac{1}{19}$	–	–	–
3.	हैमवत क्षेत्र	–	$166319 \frac{56}{212}$	$214051 \frac{160}{212}$	$261784 \frac{52}{212}$
4.	महाहिमवान् पर्वत	$33684 \frac{4}{19}$	–	–	–
5.	हरि क्षेत्र	–	$665277 \frac{12}{212}$	$856217 \frac{4}{212}$	$1047136 \frac{208}{212}$
6.	निषध पर्वत	$134736 \frac{16}{19}$	–	–	–
7.	विदेह क्षेत्र	–	$2661108 \frac{48}{212}$	$3424828 \frac{16}{212}$	$4188547 \frac{196}{212}$
8.	नील पर्वत	$134736 \frac{16}{19}$	–	–	–
9.	रम्यक क्षेत्र	–	$665277 \frac{12}{212}$	$856217 \frac{4}{212}$	$1047136 \frac{208}{212}$
10.	रुक्मि पर्वत	$33684 \frac{4}{19}$	–	–	–
11.	हैरण्यवत क्षेत्र	–	$166319 \frac{56}{212}$	$214051 \frac{160}{212}$	$261784 \frac{52}{212}$
12.	शिखरी पर्वत	$8421 \frac{1}{19}$	–	–	–
13.	ऐरावत क्षेत्र	–	$41579 \frac{179}{212}$	$53512 \frac{199}{212}$	$65446 \frac{13}{212}$

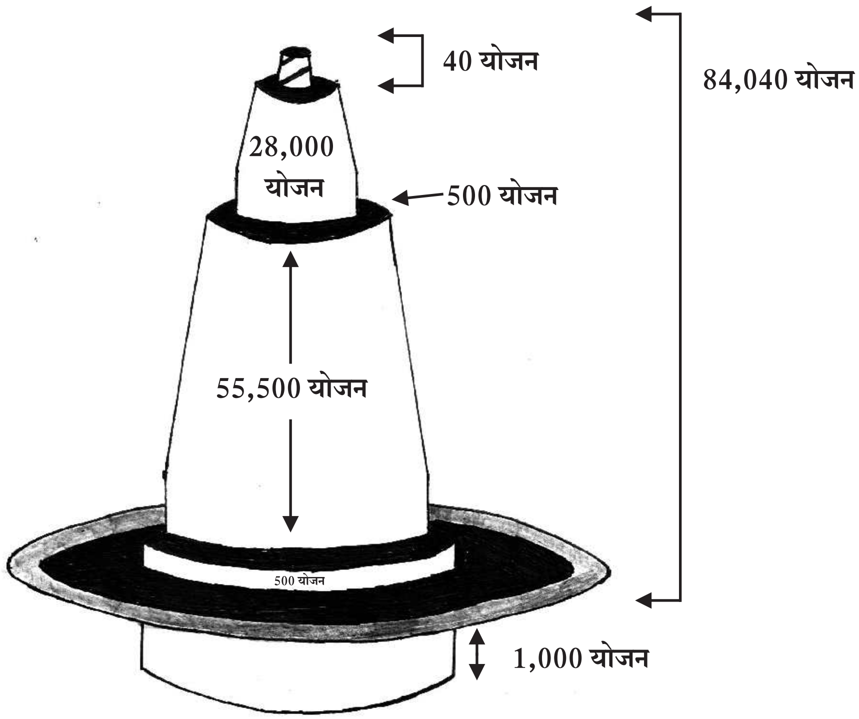

चारों मेरुओं का विस्तार

- ✻ चारों मेरु 85,040 योजन ऊँचे है।
- ✻ इसकी नींव 1,000 योजन की है।
- ✻ पृथ्वीतल पर इन पर्वतों का विस्तार 9,400 योजन है।
- ✻ इन पर्वतों की नींव के बाद पृथ्वीतल पर भद्रसाल वन स्थित है और $1225\frac{79}{88}$ योजन विस्तार वाला है।
- ✻ भद्रशाल वन से 500 योजन ऊपर जाकर सानुप्रदेश (कटनी) पर नन्दन वन है। यह 500 योजन प्रमाण है।
- ✻ इससे 55,500 योजन ऊपर जाकर सौमनस वन है। यह भी 500 योजन प्रमाण है।

* सौमनस वन से 28,000 योजन ऊपर जाकर पाण्डुक वन है। यह 494 योजन प्रमाण है।
* पाण्डुक वन के ऊपर मध्य में 12 योजन चौड़ी, 40 योजन ऊँची चूलिका है।
* मेरु पर्वत नीचे से घटते–घटते चूलिका के अग्रभाग पर 4 योजन का रह जाता है।

1,000+500+55,500+28,000+40=85,040

मनुष्य लोक कहाँ तक है?

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ।।35।।

सूत्रार्थ–मानुषोत्तर पर्वत के पहले तक ही मनुष्य हैं। अर्थात् मानुषोत्तर पर्वत के पहले अढ़ाई द्वीप ही मनुष्य लोक है, इतने में ही मनुष्य रहते हैं।

* जो मनुष्यायु कर्म के उदय से मानुष होते है, वो मनुष्य है।
* जो जीव नित्य ही मन्यते, हेय– उपादेय को जानते हैं।
* मनसा निपुणा :– शिल्प आदि अनेक कला, चुतराई में प्रवीण हैं।
* मनसा उत्कटा :– जो धारणा आदि दृढ़ उपयोग के धारी हैं, व मनुष्य है।
* मनुष्य सामान्य से एक प्रकार के और विशेष रूप से चार प्रकार के हैं।

1. सामान्य मनुष्य 2. पर्याप्त मनुष्य
3. योनिमती मनुष्य और 4. अपर्याप्तक मनुष्य
1. सामान्य मनुष्य – सभी भेदों का समुदाय रूप मनुष्य।

2. पर्याप्त मनुष्य – मात्र पर्याप्तक मनुष्य

3. योनिमती मनुष्य – द्रव्य स्त्री वेदी मनुष्य

4. अपर्याप्तक मनुष्य – श्वास के अठारहवें भाग में जन्म–मरण करने वाले लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य।

- ये चारों प्रकार के मनुष्य सैनी ही हैं।

* ढ़ाई द्वीप में पर्याप्त मनुष्य राशि का प्रमाण क्या है ?

- 19807040628566084398385987584 अंक प्रमाण।

* योनीमती मनुष्यों की राशि ?

- 59421121885698253195157962752 अंक प्रमाण ।

- ये सभी मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत के इस ओर अढ़ाई द्वीप में ही उत्पन्न होते हैं, आगे नहीं।

- ढ़ाई द्वीप के उस ओर ऋद्धिधारी, आकाशगामी, विद्याधर मनुष्यों का भी गमन नहीं है।

- मानुषोत्तर पर्वत से लेकर आधे स्वयम्भूरमण द्वीप पर्यन्त मात्र सैनी पंचेन्द्रिय गर्भज, थलचर, नभचर तिर्यंच ही उत्पन्न होते हैं।

* ढ़ाईद्वीप कितने योजन प्रमाण है ?

- 45 लाख योजन प्रमाण।

द्वीप/समुद्र	पूर्व में	पश्चिम में	योग
जम्बूद्वीप	1 लाख योजन		1 लाख योजन
लवण समुद्र	2 लाख योजन	2 लाख योजन	4 लाख योजन
धातकीखण्ड द्वीप	4 लाख योजन	4 लाख योजन	8 लाख योजन
कालोदधि समुद्र	8 लाख योजन	8 लाख योजन	16 लाख योजन
अर्ध पुष्करवर द्वीप	8 लाख योजन	8 लाख योजन	16 लाख योजन
योग			45 लाख योजन

ढ़ाई द्वीप 45 लाख योजन प्रमाण कैसे ?

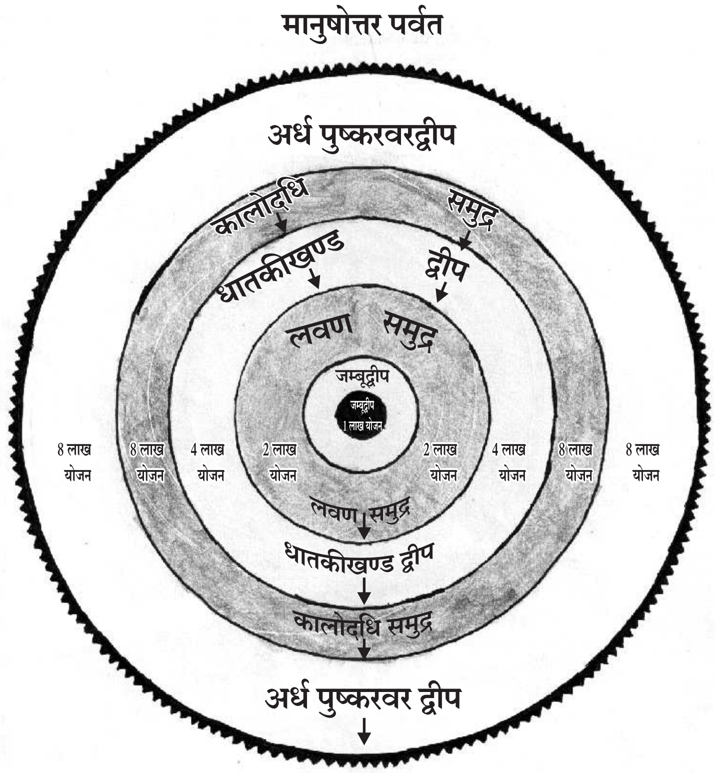

मानुषोत्तर पर्वत

✻ मानुषोत्तर पर्वत का नाम मानुषोत्तर क्यों पड़ा ?

● ''मनुष्य लोक'' की सीमा पर स्थित होने के कारण।

✻ मानुषोत्तर पर्वत कहाँ पर है, और कैसा ?

● पुष्करवर द्वीप के मध्य में ''चूड़ी'' के समान ''गोल'' है।

● यह पर्वत मनुष्य लोक की तरफ एक समान दीवारवत् तथा दूसरी तरफ एक समान न होकर नीचे अधिक और ऊपर कम चौड़ाई वाला है इस पर्वत का विस्तार मूल में 1,022 योजन मध्य में 723 योजन और शिखर पर 424 योजन है।

मानुषोत्तर पर्वत

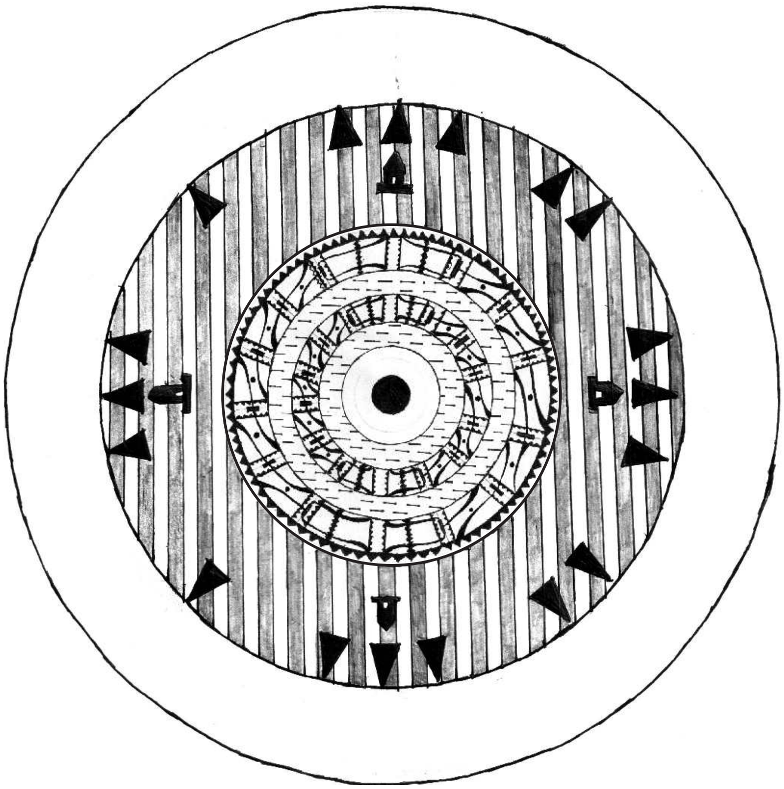

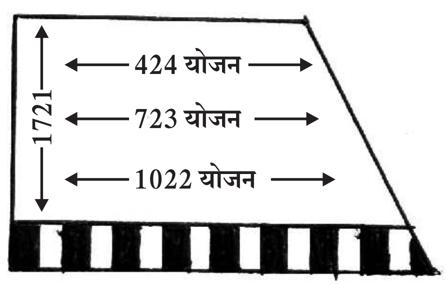

- ✻ इस पर्वत की ऊँचाई 1721 योजन और नींव 430 योजन 1 कोस है।
- ✻ इस पर्वत पर 4 अकृत्रिम चैत्यालय हैं।

विशेष

- ✻ यदि मानुषोत्तर से आगे मनुष्य का 1 प्रदेश भी नहीं जाता तो तीर्थंकरों के तप–कल्याणक के केश इन्द्र पाँचवें क्षीर समुद्र में कैसे ले जाता है ?
- ● आपका यह प्रश्न उपयुक्त है। वे केश पुद्गल द्रव्य हैं। उनमें आत्मा के प्रदेश नहीं हैं।
- ● पुद्गल द्रव्य के सर्वत्र गमन में कोई बाधा नहीं है।
- ✻ मानुषोत्तर पर्वत के बाहर मनुष्य तीन अवस्थाओं में पाये जाते हैं–
- ● जो मनुष्य मरकर ढ़ाईद्वीप के बाहर उत्पन्न होने वाले हैं, वे यदि मरण के पहले मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, तो इसके द्वारा उनका मनुष्य क्षेत्र के बाहर गमन देखा जाता है।
- ● ढ़ाई द्वीप के बाहर निवास करने वाले जो जीव मरकर मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, उनके मनुष्यायु और मनुष्यगति नामकर्म का उदय होने पर भी ढ़ाईद्वीप में प्रवेश करने के पूर्व तक उनका इस क्षेत्र के बाहर अस्तित्व देखा जाता है।
- ● केवलीसमुद्घात के समय उनके आत्मप्रदेशों का मनुष्यलोक के बाहर अस्तित्व देखा जाता है।
- ● इन तीन अपवादों को छोड़कर किसी भी अवस्था में मनुष्यों का मनुष्यलोक के बराबर अस्तित्व नहीं देखा जाता।

मनुष्यों के प्रकार

आर्या-म्लेच्छाश्च।।36।।

सूत्रार्थ-मनुष्यों के दो भेद हैं-आर्य और म्लेच्छ

मनुष्यों के भेद

आर्य

- अनेक गुण सहित,
- गुणवान पुरुषों द्वारा मानने योग्य,
- आर्य क्षेत्र में उत्पन्न

ऋद्धि प्राप्त
(ऋद्धिप्राप्त आर्यों के ऋद्धियों की अपेक्षा 8 भेद हैं।)

1. बुद्धिऋद्धि धारक आर्य
2. क्रियाऋद्धि धारक आर्य
3. विक्रियाऋद्धि धारक आर्य
4. तपऋद्धि धारक आर्य
5. बल ऋद्धि धारक आर्य
6. औषधऋद्धि धारक आर्य
7. रसऋद्धि धारक आर्य
8. क्षेत्रऋद्धि धारक आर्य

ऋद्धि रहित
(ऋद्धिरहित आर्य 5 प्रकार के होते हैं।)

1. सम्यक्त्व आर्य
2. चारित्र आर्य
3. कर्म आर्य
4. जाति आर्य
5. क्षेत्र आर्य

म्लेच्छ

- आचार रूप व्रत, क्रिया आदि गुण रहित।
- जो निर्लज्जतापूर्वक कुछ भी व्यवहार करते हैं।
- पाप क्षेत्र में जन्म लेने वाले

अंतर्द्वीपज
(कुभोगभूमि)

* लवण समुद्र, हिमवान् पर्वत और विजयार्ध पर्वत के मध्य में एवं पार्श्वभाग में स्थित द्वीप को "अंतर्द्वीप" कहते हैं,

* कुभोग भूमि में उत्पन्न मनुष्य

कर्मभूमिज
(म्लेच्छ खण्ड)

पुलिन्द, शवर, यवन, शक, खस, बर्बर आदि।

लवण समुद्र

- अंतर्द्रीपज जहाँ निवास करते हैं वह कुभोगभूमि कहलाती है।

✻ कुभोगभूमि कहाँ है ?

- यह लवण समुद्र में है।

✻ लवण समुद्र का स्वरूप क्या हैं ?

- लवण समुद्र जम्बूद्वीप की खाई के आकार का गोल है।
- इसका विस्तार 2 लाख योजन है।
- एक नाव के ऊपर अधोमुखी दूसरी नाव के रखने से जैसा आकार होता है। उसी प्रकार वह समुद्र चारों ओर आकाश में गोलाकार है।

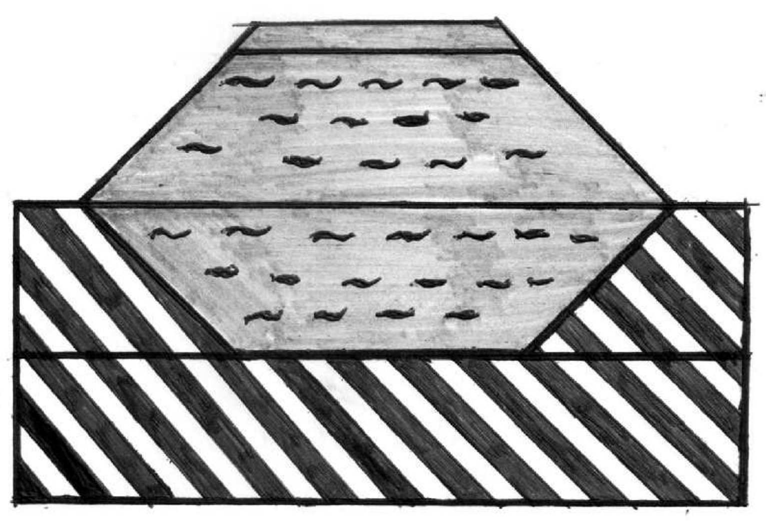

लवण समुद्र

- लवण समुद्र के बहुमध्य भाग में चारों ओर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य 1008 पाताल हैं।
- ज्येष्ठ पाताल 4, मध्यम पाताल 4, जघन्य पाताल 1000 हैं।

  4+4 + 125 x 8 = 1008
- ये पाताल घड़े के आकार सदृश हैं।
- पूर्वादिक दिशाओं में समुद्र के मध्य

  1. पाताल 2. कदम्ब 3. बड़वामुख 4. यूपकेशरी ये चार उत्कृष्ट पाताल है।

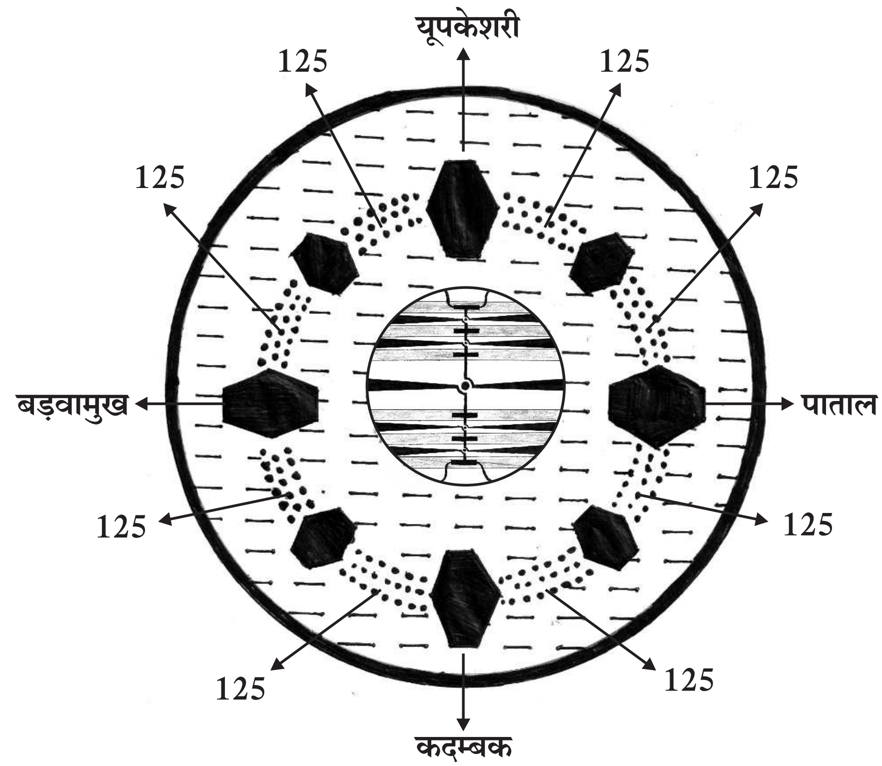

लवण समुद्र

- इन पातालों का मूल और मुख विस्तार 10,000 योजन, ऊँचाई 1,00,000 योजन और मध्य विस्तार भी 1,00,000 योजन प्रमाण है।
- ये ज्येष्ठ पाताल सीमंतक बिल के उपरिम भाग से संलग्न हैं।
- इनकी वज्रमय भित्तियाँ 500 योजन मोटी हैं।
- इन ज्येष्ठ पातालों के बीच विदिशाओं में मध्यम पाताल स्थित हैं।
- इन पाताओं का मूल और मुख विस्तार 1,000 योजन, ऊँचाई 10,000 योजन, मध्य विस्तार 10,000 योजन है।
- इनकी वज्रमय भित्तियाँ 50 योजन मोटी हैं।

उत्कृष्ट पाताल

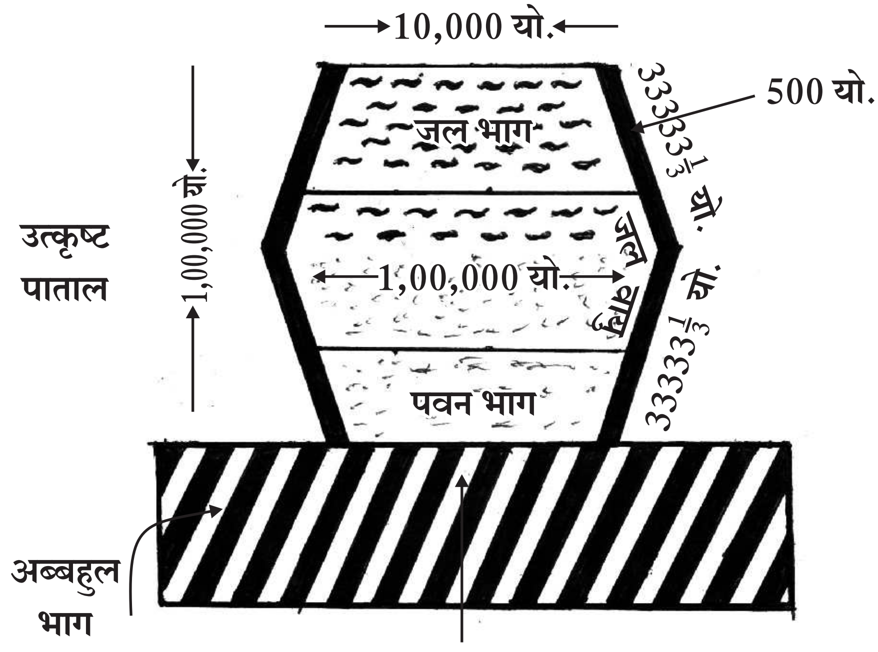

- उत्कृष्ट और मध्यम पातालों के बीच–बीच में जघन्य पाताल स्थित है। प्रत्येक अंतराल में इनका पृथक्–पृथक् प्रमाण 125–125 है।
- इनका मूल और मुख विस्तार 100–100 योजन ऊँचाई 1,000 योजन, मध्य विस्तार 1,000 योजन और मोटाई 5 योजन प्रमाण है।
- प्रत्येक पाताल के 3 भाग है–
  नीचे के भाग में वायु,
  मध्य भाग में वायु और जल
  तथा ऊपर के भाग में केवल जल रहता है।
- ऊँचाई की अपेक्षा इनके 3 भाग करने पर प्रत्येक भाग का प्रमाण
  $\frac{1,00,000}{3} = 33333\frac{1}{3}$ योजन
- मध्यम पाताल के प्रत्येक भाग का प्रमाण
  $\frac{10,000}{3} = 3333\frac{1}{3}$ योजन
- जघन्य पाताल के प्रत्येक भाग का प्रमाण
  $\frac{1000}{3} = 333\frac{1}{3}$ योजन
- शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष में लवण समुद्र के जल की वृद्धि–हानि में मध्य भाग में स्थित जल और वायु का चंचलपना ही कारण है।
- पातालों के पवन सर्वकाल स्वभाव से ही शुक्लपक्ष में बढ़ते रहते हैं और कृष्ण पक्ष में घटते हैं।
- शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा तक प्रतिदिन $2,222\frac{2}{9}$ योजन पवन की वृद्धि हुआ करती है।
- $2222\frac{2}{9} \times 15 = 33,333\frac{1}{3}$ योजन

- इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में अमावस्या पर्यन्त वायु का हानिचय और जल का वृद्धिचय समझना चाहिए।
- पूर्णिमा को पातालों के अपने–अपने 3 भागों में से नीचे के 2 भागों में वायु और ऊपर के तीसरे भाग में केवल जल रहता है।
- अमावस्या को अपने–अपने तीन भागों में क्रमशः ऊपर के 2 भागों में जल और नीचे के तीसरे भाग में केवल वायु रहती है।

पातालों के पार्श्वभाग में स्थित पर्वतों का निरुपण

- समुद्र के दोनों किनारों से 42,000 योजन प्रमाण प्रवेश करने पर पातालों के पार्श्वभागों में 8 पर्वत है।
- अर्धघट के सदृश वे पर्वत 1,000 योजन ऊँचे हैं।
- पाताल की पश्चिम दिशा में कौस्तुभ और पूर्व दिशा में कौस्तुभास पर्वत स्थित हैं।
- दोनों पर्वत वज्रमय मूलभाग में संयुक्त हैं।
- ये पर्वत मध्यभाग में रजत से और अग्रभागों में विविध प्रकार के दिव्य रत्नों से निर्मित हैं तथा सुंदर मार्गों अट्टालयों, तट–वेदियों एवं तोरणों से युक्त हैं।
- कदम्ब पाताल की उत्तर दिशा में उदक और दक्षिण दिशा में उदकाभास नामक पर्वत स्थित है।
- ये दोनों पर्वत नीलमणि जैसे वर्ण वाले हैं।
- बड़वामुख पाताल की पूर्व दिशा में शंख और पश्चिम दिशा में महाशंख नामक पर्वत हैं।
- ये दोनों ही पर्वत शंख सदृश वर्णवाले हैं।
- यूपकेशरी के दक्षिण भाग में दक और उत्तर भाग में दकवास नामक पर्वत स्थित है।
- ये दोनों ही पर्वत वैडूर्यमणिमय हैं।

48 कुमानुष (कुभोगभूमि) द्वीपों का निरूपण

- लवण समुद्र में 48 कुमानुष–द्वीप हैं। इनमें 24 द्वीप अभ्यंतर भाग में और 24 ही बाह्य भाग में है।

लवण समुद्र सम्बन्धी अंतर्द्वीपज मनुष्य

आठों दिशाओं में	– 8 द्वीप
इन द्वीपों के मध्यवर्ती अंतराल में	– 8 द्वीप
हिमवान् पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में	– 2 द्वीप
शिखरी पर्वत के दोनों पार्श्व भागों में	– 2 द्वीप
विजयार्ध पर्वतों के दोनों पार्श्व भागों में	– 4 द्वीप
इस प्रकार लवण समुद्र के भीतर	– 24 द्वीप
इसी प्रकार लवण समुद्र के बाहरी तरफ भी	– 24
	48

लवण समुद्र के समान कालोदधि समुद्र में भी 48 अंतर्द्वीप है।

48+48=96

- जम्बूद्वीप की जगती से 500 योजन जाकर 4 द्वीप चारों दिशाओं में और इतने ही योजन जाकर 4 द्वीप चारों विदिशाओं में भी है।
- अंतर दिशाओं में स्थित द्वीप जम्बूद्वीप की जगती से 550 योजन और पर्वतों के पार्श्वभागों में स्थित द्वीप 600 योजन प्रमाण जाकर हैं।
- लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट से बाहर की ओर 100–100 योजन विस्तार वाले 4 द्वीप 500 योजन दूर जल की ओर जाकर हैं।

- विदिशा सम्बन्धी 55–55 योजन विस्तार वाले 4 द्वीप 500 योजन दूर हैं।
- अंतर दिशा सम्बन्धी 50–50 योजन विस्तार वाले 8 द्वीप 550 योजन दूर हैं।
- पर्वतों के निकटवर्ती 25–25 योजन विस्तार वाले 8 द्वीप 600 योजन दूर जाकर स्थित हैं।
- इसी प्रकार से बाह्य तट से भीतर की ओर 24 द्वीपों को जानना चाहिए।
- पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में 1 जंघावाले, पूँछवाले, सींगवाले और गूँगे मनुष्य होते हैं।
- आग्नेय, नैऋत्य, वायव्व और ईशान विदिशा में शष्कुलीकर्ण, कर्णप्रावरण, लम्बकर्ण और शशकर्ण वाले मनुष्य होते हैं।
- दिशाओं और विदिशाओं के बीच अंतर दिशाओं में स्थित 8 द्वीपों में क्रमश:–सिंह, अश्व, श्वान, महिस, वराह, शार्दूल, घूक (उल्लू) और बंदर के मुख सदृश मुखवाले मनुष्य होते हैं।
- हिमवान् पर्वत के प्रणिधिभाग में पूर्व–पश्चिम दिशाओं में क्रमश: मत्स्य मुख एवं काल सदृश मनुष्य होते हैं।
- शिखरी पर्वत के पूर्व–पश्चिम प्रणिधिभाग में क्रमश: मेघमुख एवं विद्युन्मुख वाले मनुष्य होते हैं।
- दक्षिण विजयार्ध के प्रणिधिभाग में मेषमुख एवं गोमुख वाले कुमानुष होते हैं।
- उत्तर विजयार्ध के प्रणिधिभाग में आदर्श (दर्पण) मुख एवं हस्तिमुख वाले कुमानुष होते हैं।

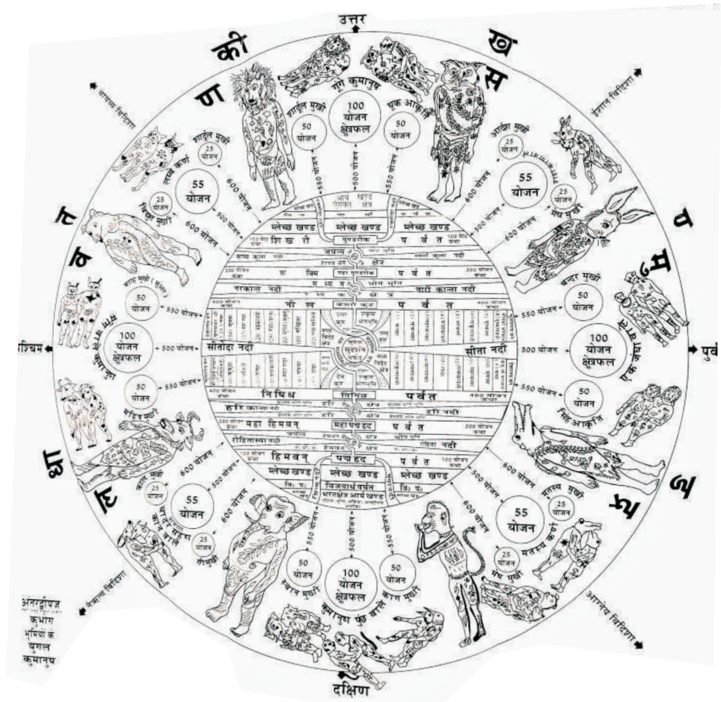

170 कर्मभूमि सम्बन्धी कर्मभूमिज (म्लेच्छ) मनुष्य

5 भरत क्षेत्र के म्लेच्छ खण्ड़ सम्बन्धी	–	5X5	= 25
5 ऐरावत क्षेत्र के म्लेच्छ खण्ड़ सम्बन्धी	–	5X5	= 25
160 विदेह क्षेत्र के म्लेच्छ खण्ड़ सम्बन्धी	–	160X5	=800
			850

म्लेच्छों के कुल स्थान = 96+850

= 946

अन्य विशेषता–

- एकोरुक कुमानुष गुफाओं में रहते हैं और मीठी मिट्टी खाते हैं।
- शेष सब कुमानुष वृक्षों के नीचे रहकर फूलों का व फलों का आहार करते हैं। सबकी आयु 1 पल्य है।

* कुमानुष द्वीपों में कौन उत्पन्न होते हैं?
- मिथ्यात्वरूपी अंधकर से आच्छन्न,
- मंद कषायी,
- प्रिय बोलने वाले,
- कुटिल परिणामी
- धर्मफल को खोजने वाले,
- मिथ्यादेवों की भक्ति में तत्पर,
- शुद्ध ओदन, जल और काँजी खाने के कष्ट से संक्लेश को प्राप्त,
- विषम पंचाग्नितप तथा कायक्लेश करने वाले,
- सम्यक्त्वरूपी रत्न से रहित,
- अज्ञानरूपी जल में डूबते हुए अधन्य।

कर्म भूमियों के नाम

भरतैरावत–विदेहा: कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्य:।।37।।

सूत्रार्थ– (देवकुरूत्तर–कुरुभ्य: अन्यत्र) देवकुरु और उत्तरकुरु के सिवा (भरतैरावत–विदेहा:) भरत, ऐरावत और विदेह (कर्मभूमयो) कर्मभूमि हैं।

कर्मभूमिज–

- जहाँ पात्रदान के साथ आजीविका चलाने के लिए असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य कर्म किए जाते हैं।
- अशुभ कर्म से नरक, शुभ कर्म से स्वर्ग, तपस्या के द्वारा मुनि बनकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक एवं समस्त (अष्ट) कर्मों का क्षय करके मोक्ष इसी कर्मभूमि से प्राप्त होता है।
- कर्मभूमि में जन्म लेने वाले कर्मभूमिज कहलाते हैं।

* कर्मभूमियाँ कितनी और कहाँ–कहाँ है?
- कर्मभूमि 170 हैं।

170 कर्मभूमियाँ

जम्बूद्वीप सम्बन्धी		
विदेह क्षेत्र में	–	32
भरत क्षेत्र	–	1
ऐरावत क्षेत्र	–	1
		34
धातकीखण्ड द्वीप सम्बन्धी		
विदेह क्षेत्र में	–	64
भरत क्षेत्र	–	2
ऐरावत क्षेत्र	–	2
		68
पुष्करार्ध द्वीप सम्बन्धी		
विदेह क्षेत्र में	–	64
भरत क्षेत्र	–	2
ऐरावत क्षेत्र	–	2
		68

34+68+68=170

विशेष–अंतिम आधे स्वयंभूरमण द्वीप एवं स्वयंभूरमण समुद्र और समुद्र के बाहर चार कोनों में भी कर्मभूमि है, वहाँ सम्यग्दृष्टि तथा पंचम गुणस्थानवर्ती तिर्यञ्च भी रहते हैं।

भोगभूमि-

- **जहाँ आजीविका चलाने के लिए षट्कर्म नहीं करने पड़ते।**
- **जहाँ के मनुष्य 10 प्रकार के कल्पवृक्षों से प्राप्त सामग्री का भोग करते हैं। वह भोगभूमि कहलाती है।**
- **भोगभूमि में जन्म लेने वाले भोगभूमिज कहलाते हैं।**

⁕ **भोगभूमि कितनी होती है और कहाँ–कहाँ?**

● **भोगभूमि 30 होती है।**

⁕ **जम्बूद्वीप सम्बन्धी**

जघन्य	–	**हैमवत एवं हैरण्यवत**	– 2
मध्यम	–	**हरि एवं रम्यक**	– 2
उत्कृष्ट	–	**देवकुरु एवं उत्तरकुरु**	– 2
			6

⁕ **धातकीखण्ड़ द्वीप सम्बन्धी**

जघन्य	–	**हैमवत एवं हैरण्यवत**	– 2x2=4
मध्यम	–	**हरि एवं रम्यक**	– 2x2=4
उत्कृष्ट	–	**देवकुरु एवं उत्तरकुरु**	– 2x2=4
			12

⁕ **पुष्करवर द्वीप सम्बन्धी**

जघन्य	–	**हैमवत एवं हैरण्यवत**	– 2x2=4
मध्यम	–	**हरि एवं रम्यक**	– 2x2=4
उत्कृष्ट	–	**देवकुरु एवं उत्तरकुरु**	– 2x2=4
			12

कुल – 6+12+12=30

परिशिष्ट–1

ईश्वर सृष्टिकर्तृत्व का निरसन एवं लोक के अनादिनिधन अकृत्रिमपने की सिद्धि

जिसमें जीवादि पदार्थ अपनी–अपनी पर्यायों सहित देखे जायें उसे लोक कहते हैं। शास्त्रों के जानकार आचार्यों ने लोक का यही स्वरूप बतलाया है **लोक्यन्ते जीवादिपदार्था यस्मिन् स लोकः** जहाँ जीवादि द्रव्यों का विस्तार निवास करता हो उसे क्षेत्र कहते हैं। सार्थक नाम होने के कारण विद्वान् पुरुष लोक को ही क्षेत्र कहते हैं। जीवादि पदार्थों को अवगाह देने वाला यह लोक अकृत्रिम है– किसीका बनाया हुआ नहीं है, नित्य है इसका कभी सर्वथा प्रलय नहीं होता, अपने–आप ही बना हुआ है और अनन्त आकाश के ठीक मध्यभाग में स्थित है।

कितने ही मूर्ख लोग कहते हैं कि इस लोक का बनाने वाला कोई–न–कोई अवश्य है। ऐसे लोगों का दुराग्रह दूर करने के लिए यहाँ सर्वप्रथम सृष्टिवाद की ही परीक्षा की जाती है। यदि यह मान लिया जाये कि इस लोक का कोई बनाने वाला है तो यह विचार करना चाहिए कि वह सृष्टि के पहले लोक की रचना करने के पूर्व सृष्टि के बाहर कहाँ रहता था? किस जगह बैठकर लोक की रचना करता था? यदि यह कहो कि वह आधार रहित और नित्य है तो उसने इस सृष्टि को कैसे बनाया और बनाकर कहाँ रखा?

दूसरी बात यह है कि आपने उस ईश्वर को एक तथा शरीर रहित माना है इससे भी वह सृष्टि का रचयिता नहीं हो सकता क्योंकि एक ही ईश्वर अनेक रूप संसार की रचना करने में समर्थ कैसे हो सकता है? तथा शरीर रहित अमूर्तिक ईश्वर से मूर्तिक वस्तुओं की रचना कैसे हो सकती है? क्योंकि लोक में यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि मूर्तिक वस्तुओं की रचना मूर्तिक पुरुषों द्वारा ही होती है जैसे कि मूर्तिक कुम्हार से मूर्तिक घट की ही रचना होती है।

एक बात यह भी है– जबकि संसार के समस्त पदार्थ कारण–

सामग्री के बिना नहीं बनाये जा सकते तब ईश्वर उसके बिना ही लोक को कैसे बना सकेगा? यदि यह कहो कि वह पहले कारण-सामग्री को बना लेता है बाद में लोक को बनाता है तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि इसमें अनवस्था दोष आता है। कारण-सामग्री को बनाने के लिए भी कारण सामग्री की आवश्यकता होती है, यदि ईश्वर उस कारण सामग्री को भी पहले बनाता है तो उसे द्वितीय कारण-सामग्री के योग्य तृतीय कारण-सामग्री को उसके पहले भी बनाना पड़ेगा। और इस तरह उस परिपाटी का कभी अन्त नहीं होगा।

यदि यह कहो कि वह कारण-सामग्री स्वभाव से ही अपने-आप ही बन जाती है, उसे ईश्वर ने नहीं बनाया है तो यह बात लोक में भी लागू हो सकती है- मानना चाहिए कि लोक भी स्वत:सिद्ध है उसे किसी ने नहीं बनाया। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी विचारणीय है कि उस ईश्वर को किसने बनाया? यदि उसे किसी ने बनाया है तब तो ऊपर लिखे अनुसार अनवस्था दोष आता है और यदि वह स्वत:सिद्ध है उसे किसी ने भी नहीं बनाया है तो यह लोक भी स्वत:सिद्ध हो सकता है-अपने आप बन सकता है। यदि यह कहो कि वह ईश्वर स्वतन्त्र है तथा सृष्टि बनाने में समर्थ है इसलिए सामग्री के बिना ही इच्छा मात्र से लोक को बना लेता है तो आपकी यह इच्छा मात्र है। इस युक्तिशून्य कथन पर भला कौन बुद्धिमान् मनुष्य विश्वास करेगा? एक बात यह भी विचार करने योग्य है कि यदि वह ईश्वर कृतकृत्य है- सब कार्य पूर्ण कर चुका है- उसे अब कोई कार्य करना बाकी नहीं रह गया है तो उसे सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा ही कैसे होगी? क्योंकि कृतकृत्य पुरुष को किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती। यदि यह कहो कि वह अकृतकृत्य है तो फिर वह लोक को बनाने के लिए समर्थ नहीं हो सकता। जिस प्रकार अकृतकृत्य कुम्हार लोक को नहीं बना सकता।

एक बात यह भी है कि आपका माना हुआ ईश्वर अमूर्तिक है, निष्क्रिय है, व्यापी है और विकार रहित है सो ऐसा ईश्वर कभी भी लोक को नहीं बना सकता क्योंकि यह ऊपर लिख आये हैं कि

अमूर्तिक ईश्वर से मूर्तिक पदार्थों की रचना नहीं हो सकती। किसी कार्य को करने के लिए हस्त-पादादि के संचालन रूप कोई-न-कोई क्रिया अवश्य करनी पड़ती है परन्तु आपने तो ईश्वर को निष्क्रिय माना है इसलिए वह लोक को नहीं बना सकता। यदि सक्रिय मानो तो वह असंभव है क्योंकि क्रिया उसी के हो सकती है जिसके अधिष्ठान से कुछ क्षेत्र बाकी बचा हो परन्तु आपका ईश्वर तो सर्वत्र व्यापी है वह क्रिया किस प्रकार कर सकेगा? इसके सिवाय ईश्वर को सृष्टि रचने की इच्छा भी नहीं हो सकती क्योंकि आपने ईश्वर को निर्विकार माना है। जिसकी आत्मा में राग-द्वेष आदि विकार नहीं है उसके इच्छा का उत्पन्न होना असम्भव है। जबकि ईश्वर कृतकृत्य है तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में किसी की चाह नहीं रखता तब सृष्टि के बनाने में इसे क्या फल मिलेगा? इस बात का भी तो विचार करना चाहिए, क्योंकि बिना प्रयोजन केवल स्वभाव से ही सृष्टि की रचना करता है तो उसकी वह रचना निरर्थक सिद्ध होती है। यदि यह कहो कि उसकी यह क्रीड़ा ही है, क्रीड़ा मात्र से ही जगत् को बनाता है तब तो दु:ख के साथ कहना पड़ेगा कि आपका ईश्वर वड़ा मोही है, बड़ा अज्ञानी है जो कि बालकों के समान निष्प्रयोजन कार्य करता है।

यदि यह कहो कि ईश्वर जीवों के शरीरादिक उनके कर्मों के अनुसार ही बनाता है अर्थात् जो जैसा कर्म करता है उसके वैसे ही शरीरादि की रचना करता है तो यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार मानने से आपका ईश्वर ईश्वर ही नहीं ठहरता। उसका कारण यह है कि वह कर्मों की अपेक्षा करने से जुलाहे की तरह परतन्त्र हो जायेगा और परतन्त्र होने से ईश्वर नहीं रह सकेगा, क्योंकि जिस प्रकार जुलाहा सूत तथा अन्य उपकरणों के परतन्त्र होता है तथा परतन्त्र होने से ईश्वर नहीं कहलाता इसी प्रकार आपका ईश्वर भी कर्मों के परतन्त्र है तथा परतन्त्र होने से ईश्वर नहीं कहला सकता। ईश्वर तो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हुआ करता है। यदि यह कहो कि जीव के कर्मों के अनुसार सुख-दु:खादि कार्य अपने-आप होते रहते हैं ईश्वर उनमें निमित्त माना ही

जाता है तो भी आपका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जब सुख-दु:खादि कार्य कर्मों के अनुसार अपने-आप सिद्ध हो जाते हैं तब खेद है कि आप व्यर्थ ही ईश्वर की पुष्टि करते हैं।

कदाचित् यह कहा जाये कि ईश्वर बड़ा प्रेमी है- दयालु है इसलिए वह जीवों का उपकार करने के लिए ही सृष्टि की रचना करता है तो फिर उसे इस समस्त सृष्टि को सुखरूप तथा उपद्रव रहित ही बनाना चाहिए था। दयालु होकर भी सृष्टि के बहुभाग को दु:खी क्यों बनाता? एक बात यह भी है कि सृष्टि के पहले जगत् था या नहीं? यदि था तो फिर स्वत:सिद्ध वस्तु के रचने में उसने व्यर्थ परिश्रम क्यों किया? और यदि नहीं था तो उसकी वह रचना क्या करेगा? क्योंकि जो वस्तु आकाश कमल के समान सर्वथा असत् है उसकी कोई रचना नहीं कर सकता। यदि सृष्टि का बनाने वाला ईश्वर मुक्त है कर्ममल कलंक से रहित है तो वह उदासीन-राग-द्वेष से रहित होने के कारण जगत् की सृष्टि नहीं कर सकता। और यदि संसारी है-कर्ममल कलंक से सहित है तो वह हमारे-तुम्हारे समान ही ईश्वर नहीं कहलायेगा तब सृष्टि किस प्रकार करेगा? इस तरह यह सृष्टिवाद किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं होता।

जरा इस बात का भी विचार कीजिए कि वह ईश्वर लोक को बनाता है इसलिए लोक के समस्त जीव उसकी सन्तान के समान हुये फिर वही ईश्वर सबका संहार भी करता है इसलिए उसे अपनी सन्तान के नष्ट करने का भारी पाप लगता है। कदाचित् यह कहो कि दुष्ट जीवों का निग्रह करने के लिए ही वह संहार करता है तो उससे अच्छा तो यही है कि वह दुष्ट जीवों को उत्पन्न ही नहीं करता।

यदि आप यह कहें- कि 'जीवों के शरीरादि की उत्पत्ति किसी बुद्धिमान कारण से ही हो सकती है क्योंकि उनकी रचना एक विशेष प्रकार की है। जिस प्रकार किसी ग्राम आदि की रचना विशेष प्रकार की होती है अत: वह किसी बुद्धिमान् कारीगर का बनाया हुआ होता है

उसी प्रकार जीवों के शरीरादिक की रचना भी विशेष प्रकार की है अत: वे भी किसी बुद्धिमान् कर्त्ता के बनाये हुये हैं और वह बुद्धिमान् कर्त्ता ईश्वर ही है'। परन्तु आपका यह हेतु ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करने में समर्थ नहीं क्योंकि विशेष रचना आदि की उत्पत्ति अन्य प्रकार से भी हो सकती है। इस संसार में शरीर, इन्द्रियाँ, सुख-दु:ख आदि जितने भी अनेक प्रकार के पदार्थ देखे जाते हैं उन सबकी उत्पत्ति चेतन-आत्मा के साथ सम्बन्ध रखने वाले कर्मरूपी विधाता के द्वारा ही होती है। इसलिए हम प्रतिज्ञापूर्वक कहते हैं कि संसारी जीवों के अंग-उपांग आदि में जो विचित्रता पायी जाती है वह सब निर्माण नामक नामकर्म रूपी विधाता की कुशलता से ही उत्पन्न होती है। इन कर्मों की विचित्रता से अनेकरूपता को प्राप्त हुआ यह लोक ही इस बात को सिद्ध कर देता है कि शरीर, इन्द्रिय आदि अनेक रूपधारी संसार का कर्त्ता संसारी जीवों की आत्माएँ ही हैं और कर्म उनके सहायक हैं। अर्थात् ये संसारी जीव ही अपने कर्म के उदय से प्रेरित होकर शरीर आदि संसार की सृष्टि करते हैं।

विधि, सृष्टा विधाता, दैव, पुराकृत, कर्म और ईश्वर ये सब कर्मरूपी ईश्वर के पर्यायवाचक शब्द हैं इनके सिवाय और कोई लोक का बनाने वाला नहीं है। जबकि ईश्वरवादी पुरुष आकाश काल आदि की सृष्टि ईश्वर के बिना ही मानते हैं तब उनका यह कहना कहाँ रहा कि संसार की सब वस्तुएँ ईश्वर के द्वारा ही बनायी गयी हैं? इस प्रकार प्रतिज्ञा भंग होने के कारण शिष्ट पुरुषों को चाहिए कि वे ऐसे सृष्टिवादी का निग्रह करें जो कि व्यर्थ ही मिथ्यात्व के उदय से अपने दूषित मत का अहंकार करता है। इसलिए मानना चाहिए कि यह लोक काल द्रव्य की भाँति ही अकृत्रिम है अनादि निधन है- आदि-अन्त से रहित है और जीव, अजीव आदि तत्त्वों का आधार होकर हमेशा प्रकाशमान रहता है। न इसे कोई बना सकता है न इसका संहार कर सकता है, यह हमेशा अपनी स्वाभाविक स्थिति में विद्यमान रहता है तथा अधोलोक तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक इन तीन भेदों से सहित है।

* आदिपुराण (भाग-1 पर्व-4) -श्लोक नं. 13-40

परिशिष्ट–2

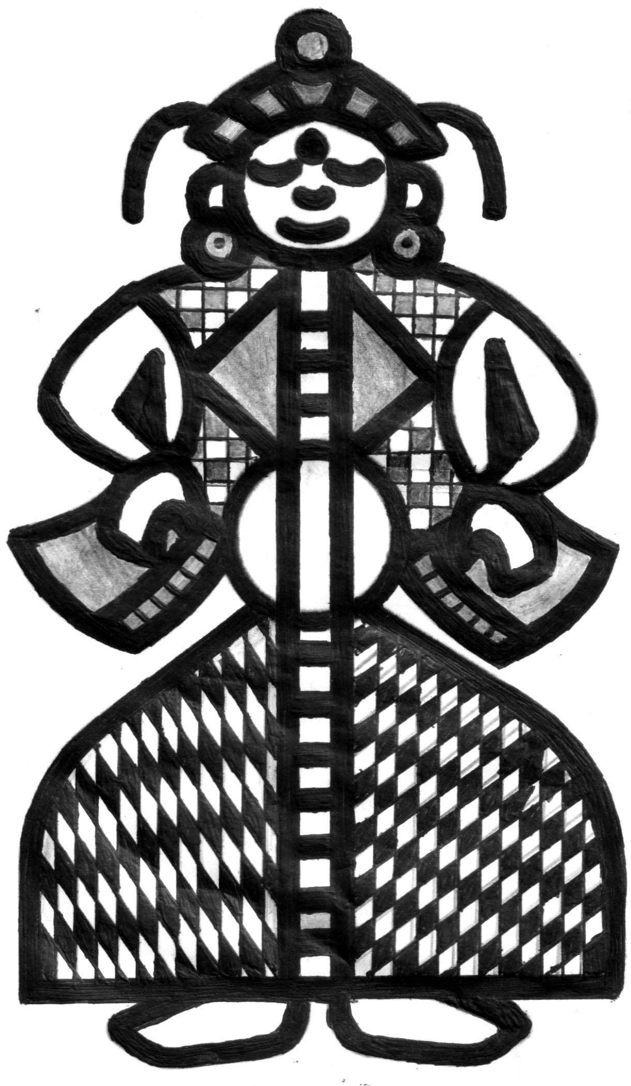

पुरुषाकार लोक

जैसे– एक पुरुष जो दोनों पैर फैलाकर कटि पर दोनों तरफ 1–1 हाथ रखकर खड़ा है, यह जो आकार बनाता है, वह लोक का आकार है।

चौदह राजू उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादितैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।।

पुरुषाकार लोक

अधोलोक	– पुरुष की जंघा तथा नितम्ब के समान
मध्यलोक	– कमर के समान
चौथे स्वर्ग का अंत	– नाभि के समान
5वाँ–6वाँ स्वर्ग	– छाती के समान
13वाँ–14वाँ स्वर्ग	– भुजा के समान
15वाँ–16वाँ स्वर्ग	– स्कंध के समान
नव ग्रैवेयक	– ग्रीवा के समान
नव अनुदिश	– उन्नत डाँड़ी के समान
पंचानुत्तर	– मुख के समान
सिद्धक्षेत्र	– ललाट के समान
सिद्ध जीवों का निवास	– मस्तक के समान

जिसके मध्य में जीवादि समस्त पदार्थ स्थित हैं ऐसा यह लोकरूपी पुरुष अपौरुषेय ही है–अकृत्रिम ही है। (हरिवंश पुराण 29–32/चौथा पर्व)

परिशिष्ट–3

* **कुछ कम का प्रमाण $32162241\frac{2}{3}$ धनुष कैसे प्राप्त होता है ?**
* त्रस नाली की ऊँचाई 14 राजू प्रमाण है।
* इसमें सातवें नरक के नीचे 1 राजू प्रमाण कलकल नामक स्थावर लोक है, यहाँ त्रस जीव नहीं रहते, अत: इसे 13 राजू कहा है।

※ सप्तम नरक के मध्यम भाग में ही नारकी (त्रस) हैं।

※ नीचे के $3,999\frac{1}{3}$ योजन यानि $3,19,94,666\frac{2}{3}$ धनुष में नहीं हैं।

※ इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक में सर्वार्थसिद्धि से ईषत्प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी के मध्य 12 योजन यानि 96,000 धनुष का अंतराल है।

※ आठवीं पृथ्वी की मोटाई 8 योजन यानि 64,000 धनुष है।

※ इसके ऊपर 2 कोस (4000 धनुष),1 कोस (2000 धनुष) एवं 1575 धनुष मोटाई वाले 3 वातवलय हैं।

※ इस सम्पूर्ण क्षेत्र में त्रस जीव नहीं है।

$3,19,94,666\frac{2}{3}$	धनुष
96000	धनुष
64000	धनुष
4000	धनुष
2000	धनुष
1575	धनुष
$3,21,62,241\frac{2}{3}$	धनुष

परिशिष्ट–4

यहाँ क्या–क्या करने वालों को नरकों में क्या–क्या दु:ख मिलते हैं?

(1) सप्त व्यसन सेवन से सप्त व्यसनी को दु:ख देने के लिए नारकी तीक्ष्ण शूल के अग्रभाग पर चढ़ा देते हैं, कोई पूरे शरीर को जबरन साँकल खम्भों से बाँधकर करोत से चीरते हैं।

(2) कारखाना खोलने वाले के शरीर के कैंची से छोटे-छोटे टुकड़े करके यंत्रों में पेलते हैं और पत्थर की चक्कियों में उन्हें पीसते हैं, हाण्डियों में पकाते हैं, हड्डियों का चूर्ण कर देते हैं, परस्पर मारते हैं, गिद्धपक्षी एवं कौए बनकर नारकी अपनी तीक्ष्ण चोंच एवं नखों से उन नारकियों के मर्मस्थानों को छेदते हैं।

(3) मद करने वाले को तप्तायमान लोहे के आसन पर बैठाते हैं।

(4) वैर रखने वाले की भर्त्सना करके, खोटे वाक्यों से वैर याद दिलाकर, तीक्ष्ण शस्त्रों से उनके शरीर को छेद देते हैं तथा वैर याद दिला करके एक-दूसरे को मारते हैं।

(5) झूठ बोलने वाले की जीभ उखाड़ लेते हैं, अत्यधिक दाहक गर्म तांबा पिलाते हैं, उन्हें नोचते हैं शस्त्रों से बार-बार कोचते हैं, उनके दाँत तोड़ डालते हैं, ओठों को काट डालते हैं। उनके मुख में भयंकर साँपों को ठूस देते हैं।

(6) नेत्र फोड़ने वालों की दूसरे नारकी आँखें फोड़ देते हैं, गरम-गरम शलाकायें नेत्रों में डालते हैं, उनके अंगोपांग काट डालते हैं।

(7) बुरा विचार करने वालों का दूसरे नारकी पेट फाड़ डालते हैं। शराब पीने वालों को जबरन उबलता ताँबा पिलाते हैं। माँस खाने वालों को उसी के शरीर के माँस को काट-काटकर मुख में डाल देते हैं। परस्त्रीगामी को अग्नि से लाल की गई लोहे की पुतली से आलिंगन कराते हैं, चिपटा देते हैं। लोहे के तीक्ष्ण काँटों पर सुला देते हैं।

परिशिष्ट–5

जम्बूवृक्ष के परिवार वृक्ष

- जम्बूवृक्ष स्थली के उपरिम भाग में 12–12 एक दूसरे को वेष्टित करती हुई स्वर्ण वलय सदृश आधे योजन ऊँची और ऊँचाई के आठवें भाग प्रमाण 1/16 योजन चौड़ी 12 अम्बुज वेदिकाएँ हैं।
- ये वेदियाँ 4–4 गोपुरों से युक्त हैं।
- बाह्य वेदिका की ओर से प्रारम्भ करके प्रथम और द्वितीय अंतराल में परिवार वृक्षादि कुछ नहीं हैं।
- तीसरे अंतराल की आठों दिशाओं में उत्कृष्ट यक्षदेवों के 108 वृक्ष हैं।
- चौथे अंतराल में पूर्व दिशा में यक्षी देवांगनाओं के 4 वृक्ष हैं।
- पाँचवें अंतराल में वन है और उन वनों में चौकोर और गोल आकार वाली बावड़ियाँ हैं।
- छठे अंतराल में किसी भी तरह की रचना नहीं है।
- सातवें अंतराल की चारों दिशाओं में 4–4 हजार (4000X4=16000) वृक्ष अंगरक्षक देवों के हैं।
- आठवें अंतराल में ईशान, उत्तर और वायव्य दिशाओं में सामानिक देवों के 4000 वृक्ष हैं।
- नवम अंतराल की आग्नेय दिशा में अभ्यंतर पारिषद देवों के 32000 वृक्ष हैं।
- दसवें अंतराल की दक्षिण दिशा में मध्यम पारिषद देवों के 40000 वृक्ष हैं।
- ग्यारहवें अंतराल की वायव्य दिशा में बाह्य पारिषद देवों के 48000 वृक्ष हैं।
- बारहवें अंतराल की पश्चिम दिशा में सेना महत्तरों के 7 वृक्ष हैं।
- मध्य में 1 मुख्य जम्बूवृक्ष है।

1+108+4+16000+4000+32000+40000+48000+7=140120 वृक्ष

परिशिष्ट–6

विजयार्ध पर्वत संबंधी 110 नगरियाँ

विजयार्ध पर्वत पर दक्षिण श्रेणीगत 50 नगरियों के नाम

1. किंनामित	2. किन्नरगीत	3. नरगीत
4. बहुकेतु	5. पुण्डरीक	6. सिंहध्वज
7. श्वेतकेतु	8. गरुड़ध्वज	9. श्रीप्रभ
10. श्रीधर	11. लौहार्गल	12. अरिंजय
13. वज्रार्गल	14. वज्रादढ्य	15. विमोचिता
16. पुर (जयपुरी)	17. शकटमुखी	18. चतुर्मुख
19. बहुमुख	20. अरजस्का	21. विरजस्का
22. रथनूपुर	23. मेखलामपुर	24. क्षेमपुर
25. अपराजित	26. कामपुष्प	27. गगनचरी
28. विजयचरी	29. शुक्रपुरी	30. सजयंतनगरी
31. जयन्त	32. विजय	33. वैजयन्त
34. क्षेमंकर	35. चन्द्राभ	36. सूर्याभ
37. पुरोत्तम	38. चित्रकूट	39. महाकूट
40. हेमकूट	41. त्रिकूट	42. विचित्रकूट
43. मेघकूट	44. वैश्रवण कूट	45. सूर्यपुर
46. चन्द्र	47. नित्योद्योत	48. विमुखी
49. नित्यवाहिनी	50. सुमुखी	

विजयार्ध पर्वत पर उत्तर श्रेणीगत 50 नगरियों के नाम

1. अर्जुनी	2. अरुणी	3. कैलाश
4. वरुणी	5. विद्युत्प्रभा	6. किलकिल
7. चूड़ामणि	8. शशिप्रभ	9. वंशाल
10. पुष्पचूल	11. हंसगर्भ	12. वलाहक

13. शिवङ्कर	14. श्रीसौध	15. चमर
16. शिवमन्दिर	17. वसुमत्का	18. वसुमति
19. सिद्धार्थ	20. शत्रुंजय	21. केतुमाल
22. सुरपतिकान्त	23. गगननन्दन	24. अशोक
25. विशोक	26. वीतशोक	27. अलका
28. तिलक	29. अम्बर तिलक	30. मन्दर
31. कुमुद	32. कुन्द	33. गगनवल्लभ
34. दिव्यतिलक	35. भूमितिलक	36. गन्धर्वपुर
37. मुक्ताहर	38. नैमिष	39. अग्निज्वाल
40. महाज्वाल	41. श्री निकेतन	42. जयवाह
43. श्रीनिवास	44. मणिवज्र	45. भद्राश्व
46. धनंजय	47. माहेन्द्र	48. अक्षोभ
49. गिरीशिखर	50. वज्रार्द्धतर	51. गोक्षीरफन
52. विजयनगर	53. सुगन्धिनी	54. धरणी
55. धारिणी	56. दुर्ग	57. दुर्द्धर
58. सुदर्शन	59. रत्नाकर	60. रत्नपुर

(तिलोयपण्णत्ती (भाग-2) गाथा-114-128 चौथा महाधिकार)

परिशिष्ट-7

कुलकरों की कार्य व्यवस्था

1. प्रतिश्रुति - सूर्य चन्द्र को देखकर भयभीत हुए प्रजाजन के भय का निवारण किया।
2. सन्मति - ताराओं को देखने से उत्पन्न हुए भय का निवारण किया।
3. क्षेमंकर - क्रूर सिंह आदि के शब्दों को सुनकर उत्पन्न हुए भय का निवारण किया।
4. क्षेमंधर - अत्यंत क्रूरता को धारण करने वाले पशुओं को लाठी आदि से तर्जन करना सिखाया।

5. सीमंकर - कल्पवृक्ष अल्प होने से लोगों में झगड़ा देखकर कल्पवृक्षों की सीमा मात्र वचनों से की।

6. सीमंधर - कल्पवृक्षों की उपर्युक्त सीमा को झाड़ी आदि चिन्हों से चिन्हित किया।

7. विमलवाहन - घोड़े आदि की सवारी का विधान बताया।

8. चक्षुष्मान - पुत्रोत्पत्ति के क्षणभर बाद माता-पिता का मरण होने लगा, अत: संतान का मुख देखने से उत्पन्न हुए भय का निवारण।

9. यशस्वी - माता-पिता कुछ अधिक समय तक जीवित रहने लगे अत: इन्होंने संतान को आशीर्वाद देने की शिक्षा दी।

10. अभिचन्द्र - पुत्रोत्पत्ति के बाद कुछ दिनों तक जीवित रहने वाले माता-पिता को चन्द्रमादि दिखाकर बालकों को क्रीड़ा कराने की शिक्षा दी।

11. चन्द्राभ - पुत्रोत्पत्ति के बाद बहुत काल जीवित रहने से उत्पन्न हुए भय का निवारण किया।

12. मरुदेव - नदी पार करने के लिए नाव-पुल आदि बनाने पर्वतादि पर चढ़ने के लिए सीढ़ी आदि की शिक्षा दी।

13. प्रसेनजित - जरायु पटल के छेदने का उपया बताया।

14. नाभिराय - नाभिनाल छेदने का उपाय, इन्द्रधनुष-बिजली से उत्पन्न भय का निवारण, कौन सा फल औषधिरूप और कौनसा भोजन योग्य आदि बतलाया।

परिशिष्ट–8

कुलकरों के उत्सेध, आयु एवं अन्तरकाल आदि का विवरण–

क्र.	नाम	उत्सेध (धनुषों में)	आयु–प्रमाण	मतान्तर से आयु प्रमाण	जन्म का अन्तर काल	देवी के नाम	दण्ड निर्धारण
1	प्रतिश्रुति	1800	पल्य/10	कुछ कम पल्य/10	0	स्वयंप्रभा	हा
2	सन्मति	1300	पल्य/100	अमम	पल्य/80	यशस्वती	हा
3	क्षेमङ्कर	800	पल्य/1000	अडड	पल्य/800	सुनन्दा	हा
4	क्षेमन्धर	775	पल्य/10000	त्रुटित	पल्य/8000	विमला	हा
5	सीमङ्कर	750	पल्य/100000	कमल	पल्य/80000	मनोहारी	हा
6	सीमन्धर	725	पल्य/10 लाख	नलिन	पल्य/8 लाख	यशोधरा	हा मा
7	विमलवाहन	700	पल्य/1 क.	पद्म	पल्य/80 लाख	सुमती	हा मा

8	चक्षुष्मान्	675	$\frac{\text{पल्य}}{\text{10 करोड़}}$	पद्माङ्ग	$\frac{\text{पल्य}}{\text{8 करोड़}}$	धारिणी	हा मा
9	यशस्वी	650	$\frac{\text{पल्य}}{\text{100 करोड़}}$	कुमुद	$\frac{\text{पल्य}}{\text{80 करोड़}}$	कान्तमाला	हा मा
10	अभिचन्द्र	625	$\frac{\text{पल्य}}{\text{1000 करोड़}}$	कुमुदाङ्ग	$\frac{\text{पल्य}}{\text{800 करोड़}}$	श्रीमती	हा मा
11	चन्द्राभ	600	$\frac{\text{पल्य}}{\text{10 हजार क.}}$	नयुत	$\frac{\text{पल्य}}{\text{8000 करोड़}}$	प्रभावती	हा मा धिक् त्रि.सा.गा.798
12	मरुदेव	575	$\frac{\text{पल्य}}{\text{1 लाख क.}}$	नयुताङ्ग	$\frac{\text{पल्य}}{\text{80 हजार क.}}$	सत्या	,, ,, ,,
13	प्रसेनजित्	550	$\frac{\text{पल्य}}{\text{10 लाख क.}}$	पूर्व	$\frac{\text{पल्य}}{\text{8 लाख क.}}$	अमितमती	,, ,, ,,
14	नाभिराय	525	पूर्व कोटि वर्ष	पूर्वकोटि	$\frac{\text{पल्य}}{\text{80 लाख क.}}$	मरुदेवी पत्नी	,, ,, ,,

* तिलोयपण्णत्ति भाग-2 (मनुष्य अधिकार) गाथा-428 से 510

परिशिष्ट–9

चक्रवर्तियों का परिचय

क्र.	चक्रवर्तियों के नाम	शरीर का उत्सेध	आयु	कुमार काल	मण्डलीक काल	दिग्विजय काल	राज्यकाल	संयमाल	पर्यायान्तर गति
१	भरत	५०० ध.	८४०००००० पूर्व	७७०००००० पूर्व	१००० वर्ष	६०००० वर्ष	६००००० पूर्व ६१००० वर्ष	१००००० पूर्व	मोक्ष
२	सगर	४५० ”	७२०००००० पूर्व	५०००० पूर्व	५०००० पूर्व	३०००० वर्ष	७०००००० पूर्व ३००० वर्ष	१००००० पूर्व	मोक्ष
३	मघवा	$४२\frac{१}{२}$ ”	५००००० वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष	१०००० वर्ष	३९०००० वर्ष	५०००० वर्ष	सानतकुमार स्वर्ग
४	सनत्कुमार	४२ ”	३००००० वर्ष	५०००० वर्ष	५०००० वर्ष	१०००० वर्ष	९०००० वर्ष	१००००० वर्ष	सानतकुमार स्वर्ग
५	शान्ति	४० ”	१००००० वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष	८०० वर्ष	२४२०० वर्ष	२५००० वर्ष	मोक्ष
६	कुन्थु	३५ ”	९५००० वर्ष	२३७५० वर्ष	२३७५० वर्ष	६०० वर्ष	२३१५० वर्ष	२३७५० वर्ष	मोक्ष
७	अर	३० ”	८४००० वर्ष	२१००० वर्ष	२१००० वर्ष	५०० वर्ष	२०६०० वर्ष	२१००० वर्ष	मोक्ष
८	सुभौम	२८ ”	६०००० वर्ष	५००० वर्ष	५००० वर्ष	४०० वर्ष	४९५०० वर्ष	०	सप्तम नरक
९	पद्म	२२ ”	३०००० वर्ष	५०० वर्ष	५०० वर्ष	३०० वर्ष	१८७०० वर्ष	१०००० वर्ष	मोक्ष
१०	हरिषेण	२० ”	१०००० वर्ष	३२५ वर्ष	३२५ वर्ष	१५० वर्ष	८८५० वर्ष	३५० वर्ष	मोक्ष
११	जयसेन	१५ ”	३००० वर्ष	३०० वर्ष	३०० वर्ष	१०० वर्ष	१९०० वर्ष	४०० वर्ष	मोक्ष
१२	ब्रह्मदत्त	७ ”	७०० वर्ष	२८ वर्ष	५६ वर्ष	१६ वर्ष	६०० वर्ष	०	सप्तम नरक

* तिलोयपण्णत्ति (भाग–2) चतुर्थाधिकार गाथा 1292–96, 1303–13, 1379–80, 1413–1422

परिशिष्ट–10

चक्रवर्तियों का वैभव

क्र.	वैभव नाम	विशेषता एवं प्रमाण
1	शरीर–संहनन	वज्रवृषभनाराच संहनन
2	शरीर–वर्ण	स्वर्ण–सदृश
3	शरीराकार	समचतुरस्र–संस्थान
4	रानियाँ	96000
5	पटरानी	1
6	पुत्र–पुत्रियाँ	संख्यात हजार
7	गणबद्ध नामक अंगरक्षक देव	32000
8	वैद्य	360
9	रसोइया	360
10	उत्तम रत्न	14
11	चामर ढोरने वाले यक्ष	32
12	प्रत्येक के बन्धु–कुल	35000000
13	निधियाँ	9
14	शङ्ख	24
15	हल	एक लाख करोड़
16	पृथिवी	छह खण्ड
17	भेरी	12
18	पटह	12
19	गायें	3 करोड़
20	थालियाँ	1 करोड़
21	भद्रहाथी	84 करोड़
22	रथ	84 लाख

चक्रवर्तियों का वैभव

क्र.	वैभव नाम	विशेषता एवं प्रमाण
23	घोड़े	18 करोड़
24	वीर (योद्धा)	84 करोड़
25	विद्याधर	अनेक करोड़
26	म्लेच्छ राजा	88000
27	मुकुटबद्ध राजा	32000
28	नाट्यशालाएँ	32000
29	संगीतशालाएँ	32000
30	पदातिक	48 करोड़
31	देश	32000
32	ग्राम	96 करोड़
33	नगर	75000
34	खेड़े	16000
35	कर्वट	24000
36	मटंब	4000
37	पट्टन	48000
38	द्रोणमुख	99000
39	संवाहन	14000
40	अन्तर्द्वीप	56
41	कुक्षिनिवास	700
42	दुर्ग एवं वनादि	28000
43	दिव्य भोग	10 प्रकार

* तिलोयपण्णत्ति चतुर्थाधिकार गाथा–1381 से 1409

परिशिष्ट–11

चक्रवर्तियों के चौदह रत्नों का परिचय

क्र.	नाम	क्या है?	संज्ञा गाथा 1389 एवं 1393	जीव या अजीव	उत्पत्ति स्थान	कार्य
1	अश्व	घोड़ा	पवनञ्जय	जीव	विजयार्ध पर	गुफा द्वार खुल जाने पर तुरंगरत्न द्वारा बारह योजन क्षेत्र का लाँघना।
2	गज	हाथी	विजयगिरि	,,	,,	सवारी करना।
3	गृहपति	भण्डारी	भद्रमुख	,,	स्वनगर में	भण्डार आदि की सम्हाल करना।
4	स्थपति	बढ़ई	कामवृष्टि	,,	,, ,,	उन्मग्ना–निमग्ना नदियों पर पुल बनाना।
5	सेनापति	सेनाध्यक्ष	अयोध्य	,,	,, ,,	गुफाओं के द्वारा खोलना एवं सेना संचालन।
6	पुरोहित	धर्मप्रेरक	बुद्धिसमुद्र	,,	,, ,,	धार्मिक अनुष्ठान कराना।
7	युवती	पटरानी	सुभद्रा	,,	विजयार्धपर	उपभोग का साधन।
8	चक्र	आयुध	सुदर्शन	अजीव	आयुधशाला	छह खण्ड विजय का प्रेरक साधन।

क्र.	नाम	क्या है	संज्ञा गाथा 1389 एवं 1393	जीव या अजीव	उत्पत्ति स्थान	कार्य
9	छत्र	छतरी	सूर्यप्रभ	अजीव	आयुधशाला	वर्षा से कटक की रक्षा करना।
10	असि	आयुध	भूतमुख	,,	,,	शत्रु संहार।
11	दण्ड	अस्त्र	प्रचण्डवेग	,,	,,	गुफाओं के कपाट खोलना एवं वृषभाचल पर प्रशस्ति लिखना
12	काकिणी	अस्त्र	चिन्ताजननी	,,	श्री गृह	दोनों गुफाओं में प्रकाश करना।
13	चिन्तामणि	रत्न	चूड़ामणि	,,	,,	मनोवाञ्छित कार्य सिद्धि करना।
14	चर्मरत्न	तम्बू	मज्झमय	,,	,,	गंगादि नदियों के जल से कटक की रक्षा करना।

परिशिष्ट–12

चक्रवर्तियों की नव–निधियाँ

क्र.	नाम	उत्पत्ति स्थान	क्या प्रदान करती है?
1	काल	श्रीपुर	ऋतु के अनुसार द्रव्य (फल, पुष्प आदि)।
2	महाकाल	,,	भाजन (बर्तन एवं धातुएँ)।
3	पाण्डु	,,	धान्य (अनाज एवं षट्रस)।
4	मानव	,,	आयुध (अनेक शस्त्र)।
5	शङ्ख	,,	वादित्र (बाजे)।
6	पद्म	,,	वस्त्र (कपड़े)।
7	नैसर्प	,,	हर्म्य (महल एवं प्रासाद आदि)।
8	पिङ्गल	,,	आभरण (गहनें)।
9	नानारत्न	,,	रत्नसमूह (अनेक प्रकार के रत्न)।

परिशिष्ट–13

बलभद्रों का परिचय

क्र.	नाम	उत्सेध	आयु	रत्न	पर्यायान्तर प्राप्ति
१	विजय	८० धनुष	८७ लाख वर्ष	मूसल, हल, गदा और रत्नावली हार सब बलदेवों के पास रहते हैं।	मोक्ष
२	अचल	७० ,,	७७ ,, ,,		,,
३	धर्म	६० ,,	६७ ,, ,,		,,
४	सुप्रभ	५० ,,	३७ ,, ,,		,,
५	सुदर्शन	४५ ,,	१७ ,, ,,		,,
६	नन्दी	२९ ,,	६७००० ,,		,,
७	नन्दिमित्र	२२ ,,	३७००० ,,		,,
८	राम	१६ ,,	१७००० ,,		,,
९	पद्म	१० ,,	१२०० ,,		पाँचवाँ ब्रह्म–स्वर्ग

* तिलोयपण्णत्ति (भाग–2) चतुर्थाधिकार गाथा 1423, 1430–32, 1447, 1449

परिशिष्ट–14

नारायणों का परिचय

क्र.	नाम	उत्सेध	आयु	कुमारकाल	मण्डलीक काल	विजयकाल	राज्यकाल	रत्न	पर्यायान्तर प्राप्ति
१	त्रिपृष्ठ	८० ध.	८४ लाख वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष	१००० वर्ष	८३४९००० वर्ष	शक्ति, धनुष, गदा, चक्र, कृपाण, शङ्ख और दण्ड ये सब नारायणों के पास रहते हैं।	सातवाँ नरक
२	द्विपृष्ठ	७० ध.	७२ लाख वर्ष	२५००० वर्ष	२५००० वर्ष	१०० ''	७१४९९०० वर्ष		छठा नरक
३	स्वयम्भू	६० ध.	६० '' ''	१२५०० वर्ष	१२५०० वर्ष	९० ''	५९७४९१० वर्ष		'' ''
४	पुरुषोत्तम	५० ध.	३० '' ''	७०० ''	१३०० ''	८० ''	२९९७९२० वर्ष		'' ''
५	पुरुषसिंह	४५ ध.	१० '' ''	३०० ''	१२५० ''	७० ''	९९८३८० वर्ष		'' ''
६	पुरुष पुण्डरीक	२९ ध.	६५००० ''	२५० ''	२५० ''	६० ''	६४४४० वर्ष		'' ''
७	पुरुषदत्त	२२ ध.	३२००० ''	२०० ''	५० ''	५० ''	३१७०० वर्ष		पाँचवाँ ''
८	नारायण (लक्ष्मण)	१६ ध.	१२००० ''	१०० ''	३०० ''	४० ''	११५६० वर्ष		चौथा ''
९	कृष्ण	१० ध.	१००० ''	१६ ''	५६ ''	८ ''	९२० वर्ष		तीसरा ''

* तिलोयपण्णत्ति (भाग–2) गाथा– 1424, 1430, 1433–34, 1436–46, 1450

परिशिष्ट–15

रूद्रों का परिचय

क्र.	नाम	उत्सेध	आयु	कुमारकाल	संयम काल	संयम भ्रष्टकाल	पर्यायान्तर प्राप्ति
१	भीमावलि	५०० धनुष	८३ लाख पूर्व	२७६६६६६ पूर्व	२७६६६६८ पूर्व	२७६६६६६ पूर्व	सातवाँ नरक
२	जितशत्रु	४५० ,,	७१ लाख पूर्व	२३६६६६६ पूर्व	२३६६६६८ पूर्व	२३६६६६६ पूर्व	,, ,,
३	रूद्र	१०० ,,	२ लाख पूर्व	६६६६६ पूर्व	६६६६८ पूर्व	६६६६६ पूर्व	छठा नरक
४	वैश्वानल	९० ,,	१ लाख पूर्व	३३३३३ पूर्व	३३३३४ पूर्व	३३३३३ पूर्व	,, ,,
५	सुप्रतिष्ठ	८० ,,	८४ लाख वर्ष	२८ लाख वर्ष	२८ लाख वर्ष	२८ लाख वर्ष	,, ,,
६	अचल	७० ,,	६० लाख वर्ष	२० लाख वर्ष	२० लाख वर्ष	२० लाख वर्ष	,, ,,
७	पुण्डरीक	६० ,,	५० लाख वर्ष	१६६६६६६ वर्ष	१६६६६६८ वर्ष	१६६६६६६ वर्ष	,, ,,
८	अजितन्धर	५० ,,	४० लाख वर्ष	१३३३३३३ वर्ष	१३३३३३४ वर्ष	१३३३३३३ वर्ष	पाँचवाँ नरक
९	अजितनाभि	२८ ,,	२० लाख वर्ष	६६६६६६ वर्ष	६६६६६८ वर्ष	६६६६६६ वर्ष	चौथा नरक
१०	पीठाल (पीठ)	२४ ,,	१० लाख वर्ष	३३३३३३ वर्ष	३३३३३४ वर्ष	३३३३३३ वर्ष	,, ,,
११	सात्यकिपुत्र (महादेव)	७ हाथ	६९ वर्ष	७ वर्ष	३४ वर्ष	२८ वर्ष	तीसरा नरक

* तिलोयपण्णत्ति (भाग–2) गाथा– 1456–1480

परिशिष्ट–16

वर्तमान चौबीसी के प्रसिद्ध पुरुष

क्र.	तीर्थंकर	चक्रवर्ती	बलदेव	नारायण	प्रतिनारायण	रूद्र
१	१ ऋषभ	१ भरत	०	०	०	१ भीमावलि
२	२ अजित	२ सगर	०	०	०	२ जितशत्रु
३	३ सम्भव	०	०	०	०	०
४	४ अभिनन्दन	०	०	०	०	०
५	५ सुमति	०	०	०	०	०
६	६ पद्मप्रभ	०	०	०	०	०
७	७ सुपार्श्व	०	०	०	०	०
८	८ चन्द्रप्रभ	०	०	०	०	०
९	९ पुष्पदन्त	०	०	०	०	३ रूद्र
१०	१० शीतल	०	०	०	०	४ वैश्वानर
११	११ श्रेयांस	०	१ विजय	१ त्रिपृष्ठ	१ अश्वग्रीव	५ सुप्रतिष्ठ
१२	१२ वासुपूज्य	०	२ अचल	२ द्विपृष्ठ	२ तारक	६ अचल
१३	१३ विमल	०	३ धर्म	३ स्वयम्भू	३ मेरक	७ पुण्डरीक
१४	१४ अनन्त	०	४ सुप्रभ	४ पुरुषोत्तम	४ मधुकैटभ	८ अजितन्धर
१५	१५ धर्म	०	५ सुदर्शन	५ पुरुषसिंह	५ निशुम्भ	९ अजितनाभि

१६	०	३ मघवा	०	०	०	०
१७	०	४ सनत्कुमार	०	०	०	०
१८	१६ शान्तिनाथ	५ शान्तिनाथ	०	०	०	१० पीठ
१९	१७ कुन्थुनाथ	६ कुन्थुनाथ	०	०	०	०
२०	१८ अरनाथ	७ अरनाथ	०	०	०	०
२१	०	८ सुभौम	०	०	०	०
२२	०	०	६ नन्दी	६ पुण्डरीक	६ बलि	०
२३	१९ मल्लिनाथ	०	०	०	०	०
२४	०	०	७ नन्दिमित्र	७ पुरुषदत्त	७ प्रहरण	०
२५	०	९ पद्म	०	०	०	०
२६	२० मुनिसुव्रत	०	०	०	०	०
२७	०	१० हरिषेण	०	०	०	०
२८	०	०	८ राम	८ लक्ष्मण	८ रावण	०
२९	२१ नमिनाथ	०	०	०	०	०
३०	०	११ जयसेन	०	०	०	०
३१	२२ नेमिनाथ	०	९ पद्म	९ कृष्ण	९ जरासंध	०
३२	०	१२ ब्रह्मदत्त	०	०	०	०
३३	२३ पार्श्वनाथ	०	०	०	०	०
३४	२४ महावीर	०	०	०	०	११ सात्यकिपुत्र (महादेव)
	२४	१२	९	९	९	११

परिशिष्ट–17

मध्यलोक में 458 अकृत्रिम चैत्यालय

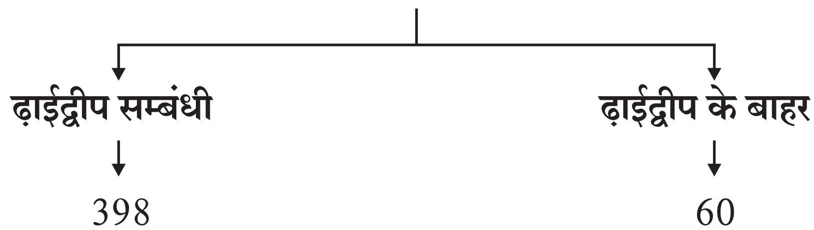

*** ढ़ाईद्वीप सम्बंधी 398 चैत्यालय कौन–कौन से ?**

पंचमेरु संबंधी	390
इष्वाकार संबंधी	4
मानुषोत्तर संबंधी	4
	398

ढ़ाईद्वीप संबंधी चैत्यालय

द्वीप	मेरु	अकृत्रिम चैत्यालय
जम्बूद्वीप	सुदर्शन	78
धातकीखण्ड़ द्वीप	विजय अचल	78 78
पुष्करार्द्ध द्वीप	मंदर विद्युन्माली	78 78
	योग	390

कितने चैत्यालय?	एक मेरु सम्बन्धी	पंचमेरु सम्बन्धी
मेरु के 4 वनों में	4x4=16	16x5=80
जम्बू-शाल्मली वृक्ष	02	02x5=10
विजयार्ध पर्वत	34	34x5=170
गजदंत पर्वत	04	04x5=20
वक्षार पर्वत	16	16x5=80
कुलाचल	06	06x5=30
योग	78	390

ढ़ाईद्वीप के बाहर 60 चैत्यालय कौन-कौन से?

8वें नन्दीश्वर द्वीप सम्बंधी = 52

11 वें कुण्डलवर द्वीप सम्बंधी = 04

13वें रुचकवर द्वीप सम्बंधी = 04

60

नन्दीश्वर द्वीप संबंधी 52 चैत्यालय कौन-कौन से?

पर्वत	एक दिशा सम्बन्धी	चार दिशा सम्बन्धी
अंजन	1	1x4=04
दधिमुख	4	4x4=16
रतिकर	8	8x4=32
योग	13	13x4=52

* इस प्रकार से मध्यलोक के 458 चैत्यालयों को जानना चाहिये।

तृतीय अध्याय

रत्न–शर्करा–बालुका–पङ्क–धूम–तमो–महातमः–प्रभा–भूमयो घनाम्बुवाताकाश – प्रतिष्ठाः सप्ताधोत्धः ।।1।। तासु त्रिंशत्पंचविंशति–पंचदश–दश–त्रि–पंचोनैक–नरक–शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम्।।2।। नारका नित्याशुभतर–लेश्या–परिणाम–देह – वेदना – विक्रियाः।।3।। परस्परोदीरित – दुःखाः।।4।। संक्लिष्टाऽसुरोदीरित–दुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः।।5।। तेष्वेक–त्रि–सप्त–दश–सप्तदश–द्वाविंशति–त्रयस्त्रिंशत्–सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः।।6।। जम्बूद्वीप–लवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः।।7।। द्वि–र्द्वि–र्विष्कम्भाः पूर्व–पूर्व परिक्षेपिणो वलयाकृतयः।।8।। तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजन–शतसहस्र–विष्कम्भो जम्बूद्वीपः।।9।। भरत–हैमवत–हरि–विदेह–रम्यक–हैरण्य–वतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि।।10।। तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिम–वन्निषध–नील–रुक्मि–शिखरिणो वर्षधर–पर्वताः।।11।। हेमार्जुन–तपनीय–वैडूर्य–रजत–हेममयाः ।।12।। मणिविचित्र – पार्श्वा उपरिमूले च तुल्य–विस्ताराः।।13।। पद्म–महापद्म–तिगिञ्छ–केशरि–महापुण्डरीक–पुण्डरीका ह्रदा–स्तेषामुपरि।।14।। प्रथमो योजन–सहस्रायामस्तदर्द्ध–विष्कम्भो ह्रदः।।15।। दशयोजनावगाहः।।16।। तन्मध्ये योजनं पुष्करम्।।17।। तद्द्विगुण–द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च।।18।। तन्निवासिन्यो देव्यः श्री – ह्री – धृति – कीर्ति – बुद्धि – लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक–परिषत्काः।।19।। गङ्गा–सिन्धु–रोहिद्रोहितास्या–हरिद्धरिकान्ता–सीता–सीतोदा–नारी–नरकान्ता–सुवर्ण–रूप्य–कूला–रक्ता–रक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ।।20।।

द्वयोर्द्वयो: पूर्वा: पूर्वगा:।।21।। शेषास्त्वपरगा:।।22।। चतुर्दश–नदी–सहस्त्र–परिवृता गङ्गा–सिन्ध्वादयो नद्य:।।23।। भरत: षड्विंशति–पञ्चयोजनशत–विस्तार: षट् चैकोनविंशति–भागा योजनस्य।।24।। तद्विगुण–द्विगुण–विस्तारा वर्षधर–वर्षा विदेहान्ता:।।25।। उत्तरा – दक्षिण – तुल्या: ।।26।। भरतैरावतयो – र्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।।27।। ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता:।।28।। एक–द्वि–त्रि–पल्योपम–स्थितयो हैमवतक –हारि–वर्षक–दैवकुरवका:।।29।। तथोत्तरा:।।30।। विदेहेषु संख्येय–काला:।।31।। भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति–शत–भाग:।।32।। द्विर्धातकीखण्डे।।33।। पुष्करार्द्धे च।।34।। प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या:।।35।। आर्या म्लेच्छाश्च।।36।। भरतैरावत–विदेहा: कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तर–कुरुभ्य:।।37।। नृस्थिती पराऽवरे त्रिपल्यो–पमान्तर्मुहूर्ते।।38।। तिर्यग्योनिजानां च।।39।।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्याय:।।3।।)

जीवनौ – रिष्ट – गंधान्वितैश्चंदन
रक्षतै: सल्लतातै–वरि–र्भक्ष्यकै।
दीपधूपै: फलै: पक्व–पूर्णार्घ–
रच्–र्चयेहंतृतीयंवराध्यायकम्।।3।।

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वार्थ सूत्रे तृतीयोऽध्याय अनर्घ्यपद प्राप्तये
अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राक्कथन

एक महायोजन में 2000 कोश होते हैं1 एक कोश में 2 मील मानने से 1 महायोजन में 4000 मील हो जाते है। 4000 मील के हाथ बनाने के लिये 1 मील संबंधी 4000 हाथ से गुणा करने पर 4000x4000 =16000000 अर्थात् एक महायोजन में 1 करोड़ 60 हाथ हुये।

वर्तमान में रैखिक माप में 1760 गज का 1 मील मानते हैं। यदि 1 गज में 2 हाथ मानें तो 1760x2=3520 हाथ का एक मील हुआ। पुन: उपर्युक्त एक महायोजन के हाथ 16000000 में 3520 हाथ का भाग देने से 16000000−3520=4545$\frac{5}{16}$ मील हुये।

इस ग्रन्थ में स्थूल रूप से व्यवहार में 1 कोश में दो मील की प्रसिद्धि के अनुसार सुविधा के लिये सर्वत्र महायोजन के 2000 कोश को 2 मील से गुणा कर एक महायोजन में 4000 मील मानकर उसी से गुणा करना चाहिए। कहीं–कहीं नक्शों में योजन की 4000 मील से गुणा करके मीलों का प्रमाण दिखाया भी गया है।

इस 'त्रिलोक भास्कर' ग्रन्थ में पेज 8 पर कोश और योजन बनाने की प्रक्रिया बतलाई गई है। उसका अच्छी तरह से मनन करके इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करना चाहिये।

आज कल कुछ लोग ऐसा कह दिया करते हैं कि पता नहीं आचार्यों के समय कोश का प्रमाण क्या था ? और योजन का प्रमाण भी क्या था ?

किंतु जब परमाणु से लेकर अवसन्नासन्न आदि परिभाषाओं से आगे बढ़ते हुये जघन्य भोग भूमि के बालके 8 अग्रभागों का कर्म भूमि का 1 बालाग्र होता है। तब तो इस व्यवस्था से यह बिल्कुल स्पष्ट हो

जाता है कि भोगभूमियों के बाल की अपेक्षा कर्मभूमि के प्रारंभ में चतुर्थकाल के मनुष्यों का बाल भी मोटा था, पुन: आज पंचम काल के मनुष्यों का बाल तो उससे भी मोटा ही होगा।

आज के अनुसंधान प्रिय विद्वानों को आज के बाल की मोटाई के हिसाब से ही एक बार अंगुल, पाद, हाथ, कोश आदि बनाकर योजन के हिसाब का अनुमान लगाना चाहिये।

श्री लक्ष्मीचन्द्र एम्. एस् सी. लिखते हैं कि–

''इस योजन की दूरी आजकल के रैखिक माप में क्या होगी ?

यदि हम 2 हाथ=1 गज मानते हैं तो स्थलरूप से 1 योजन 8000000 गज के बराकर अथवा 4545.45 मील के बराबर प्राप्त होता है।

यदि हम एक कोश को आजकल के मील के समान मान लें, तो 1 योजन 4000 मील के बराबर प्राप्त होता है।

कर्मभूमि के बालाग्र का विस्तार आजकल के सूक्ष्म यंत्रों द्वारा किये गये मापों के अनुसार $\frac{1}{500}$ इंच से लेकर $\frac{1}{200}$ इंच तक होता है। यदि हम इस प्रमाण के अनुसार योजन का माप निकालें तो उपर्युक्त प्राप्त प्रमाणों से अत्यधिक भिन्नता प्राप्त होती है। बालाग्र का प्रमाण $\frac{1}{500}$ इंच मानने पपर 1 योजन 49048.48 मील प्रमाण आता है। कर्म भूमि का बालाग्र इंच मानने से योजन 74472.72 मील के बराबर पाया जाता है। बालाग्र को इंच प्रमाण मानने से योजन का प्रमाण और भी बढ़ जाता है।

इन लक्ष्मीचन्द्र प्रोफेसर के समान अन्य विद्वानों को भी इस विषय में समझने का प्रयत्न करना चाहिये। आगम कथित इन योजन आदि के प्रमाणों को कल्पना मात्र कल्पित कर लेना उचित नहीं है।

अत: एक महायोजन में स्थूल रूप से 4000 मील समझना चाहिये, किंतु यह लगभग प्रमाण ही है। वास्तव में एक महायोजन में इससे अधिक ही मील होंगे ऐसा हमारा अनुमान है। इस प्रकार तिलोयपण्णत्ति त्रिलोकसार, श्लोकवार्तिक आदि ग्रन्थों पर दृढ़ श्रद्धा रखते हुये अपने सम्यक्त्व को सुरक्षित रखना चाहिये। जब तक केवली, श्रुत केवली के चरणों का सान्निध्य प्राप्त न हो तब तक अपने मन को चलायमान नहीं करना चाहिये। इस ग्रन्थ में संक्षेप से तीन लोक का वर्णन किया गया है जो कि बहुत ही सरल भाषा में हे। उसे पढ़कर तीन लोक में सर्वत्र घूमने से डरकर लोक के अग्रभाग में स्थिर होने का प्रयत्न करना चाहिये।